वादे वादे जायते तत्त्वबोधः।

यद्यपि आजकल कुल विद्वानोंकी सम्मितमें शास्त्रार्थकी पद्धति पदार्थनिर्णायक नहीं समझी जाती है, और ऐसी उनकी सम्मित बहुत अंशोंमें यथार्थ भी प्रतीत होती है, अन्यथा अकाट्य युक्ति-योंके पक्षमें शास्त्रार्थका परिणाम अवस्य ही परपक्ष ग्रहणके लिये होता, तथापि हमारी सम्मितमें शास्त्रार्थका परिणाम अवस्य ही विशेष फल्प्रद है। चाहे वह वादीपक्षमें पक्षपातवश भले ही स्वी-कृत न हो परन्तु निष्पक्ष विद्वानोंके हृदयमें अकाट्य युक्तिवाद और हेतुवाद अवस्य ही सन्तोपप्रद सम्भान पाता है, और विद्वानोंको जिसमें सन्तोप हो उसे ही हम सफलताका द्वार समझते हैं।

आर्यसमानके विद्वानोंने बहुत वर्षोंसे नैनियोंके साथ फीरो-बाट, खुर्जा, मुछतान, अम्बाला, नैजों, अजमेर आदि स्थानोंसे जो शास्त्रार्थ किया है और उससे जो नैनसिद्धान्तका प्रचार हुआ है तथा छोगोंने यथार्थ वस्तुबोध प्राप्त किया है उन सबका श्रेय भी यदि आर्य समानको दिया जाय तो अत्युक्त न होगा। यदि आर्यसमानके विद्वान् शास्त्रार्थके छिये उद्यत न होते तो संभव था कि नैनसिद्धान्तको पक्षपाती छोगोंमें भी विशेष आटरणीय होनेका इतना महत्व प्राप्त न हो ।।

पाठक न भूले होंगे कि गत र वर्ष पहले अजमेरमें जैनियों-का आर्यसमानके साथ मौिखक तथा लिखित शास्त्रार्थ हो चुका है। इस वर्ष भी नजीवाबाद और जैजोंमे उक्त दोनों पक्षोंके विद्वानों द्वारा शास्त्रार्थ किया जा चुका है। उक्त शास्त्रार्थ छप चुके हैं, इनके विषयमें विद्वानोंका अभिमत है कि जैनियोंका ही पक्ष विजयपक्ष रहा है। प्रसिद्ध पत्र सरस्वती सम्पादक पं॰ महावीरप्रसादनी द्विवंदी भी उक्त शास्त्रार्थोंकी समालोचना करने समय जैनियोंके पक्षको युक्तियुक्त तथा प्रवल वतला चुके हैं। फिर भी आर्य समाजके विद्वानोंका अति साहस है कि व दिये हुए दोषोंका निराकरण किये विना ही वार २ उसी विषयमें शास्त्रार्थके लिये तयार हो जाते हैं, अस्तु, हम तो उनका आभार ही मानने हैं। और " वादे वादे जायते तत्त्ववोध " इस नीतिके अनुसार विद्वानोंसं इस शास्त्रार्थपर सूक्ष्म दृष्टि डालनेके लिये प्रार्थना करते हैं।

शास्त्रार्थका पूर्व रंग।

ता० ११ जुलाईको आर्यसमानके विद्वान् प० नृसिंहदेवजी किवितार्किक दर्शनाचार्य प्रॉफसर डी० ए० वी० कालिन लाहोर विल्ली आये थे। वहां उन्होंने व्याख्यान देते हुए जैनधर्मके विषयमं अनेक मिथ्या बातें कहीं। उसी समय श्रोतृमडलमें बैठे हुए जैनिमित्र मंडलके कुल सदस्योंमेसे एक सदस्यने उक्त पंडितजीसे शातिपूर्वक कहा कि पाइतजी। आप जैन सिद्धान्तका खंडन करें इसमे हमें कोई आपित्त नही है। हम भी यही देखना चाहते हैं कि आपने जैन सिद्धान्तको यहा तक समझा है और आपकी युक्तिया जैन सिद्धानको यहा तक समझा है और आपकी युक्तिया जैन सिद्धातकी युक्तियोंके सामने कहा तक टक्कर ले सकेगी परन्तु वेसा न करके आप व्यर्थकी मिथ्या बातोमें अपना और श्रोतृगणोका समय नष्ट कर रहे हैं, यह बात विद्वत्प्रशंसनीय नही है। इस

शांतिपूर्वक वक्तव्यके उत्तरमें उक्त पंडितजी शास्त्रार्थके लिये फिर भी (जैजोंमें जैन विद्वान् पं॰ बनारसीदासजीसे निरुत्तर होनेपर भी) उद्यत होने लगे। जैनमित्र मंडलके सदस्योंको पहले शास्त्रार्थके परिणामसे उनकी ऐसी तैय्यारीपर कुछ उपेक्षा भी हुई। तथापि जोशीले जैनमित्रमंडलके नवयुवक शास्त्रार्थके नियम और निश्चित तिथिके लिये उन्हें बाध्य करने लगे। यद्यपि आर्यसमाजके विद्वान् शास्त्रार्थके लिये किसी प्रकार तैय्यार न ये तथापि अपने शब्दोंसे बाध्य होकर उन्हें शास्त्रार्थकी स्वीकृति देनी ही पडी।

परन्तु स्वीकारताके गर्भमं भी अस्वीकारता भरी हुई थी जिसका परिणाम यह हुआ कि जैन मित्रमडल और आर्यकुमार सभा देहलीके मंत्रियोंद्वारा जो शास्त्रार्थके नियम निश्चित किये गये थे . उनमें आर्यकुमार सभाकी तरफसे ऐसी २ शर्ते रक्खी गई थी जो कि शास्त्रार्थकी दृष्टिसे परपक्षको सर्वथा स्वीकृत होने गोग्य न थीं। उन शर्तोपर दृष्टि डालनेसे विद्वानोंको यह बात स्पष्ट जच जाती है कि आर्य कुमार सभा अपने वचनकी रक्षा करती हुई शास्त्रार्थस सर्वथा हटना चाहती है, हम उन दोनों ओरके पत्रोंके प्रकाशित कर पाठकोंका समय केवल शास्त्रार्थके पूर्व रंगमें ही व्यतीत करना नहीं चाहते हैं किन्तु प्रकृत मुख्य विपय शास्त्रार्थ विषयक दोनों ओरके विद्वानों द्वारा दी हुई युक्तियोंपर विचार करनेके लिये निवेदन करते हैं।

उभय पक्षसे निश्चित किए हुए नियमोंमेंसे कुछ नियम इस प्रकार हैं.—

१-ईश्वर सृष्टिका कर्ता है या नहीं ?

तीर्थकर सर्वज्ञ हो सक्ते है या नहीं ? इन्हीं दो विषयोंवर शास्त्रार्थ होगा।

२-पिहले विषयका प्रश्न केन मित्रमण्डलकी ओरसे और उत्तर आर्य कुमार सभाकी ओरसे होगा, दूसरे विषयका प्रश्न आर्यकुमार सभाकी ओरसे और उत्तर केन मित्रण्डलकी ओरसे होगा तथा उत्तरवाताकी अन्तिम वारी रहेगी।

२-हरएक विषयका शाम्त्रार्थ कमसे कम ३ दिन अवश्य चंद्रगा और प्रतिदिन रात्रिके ८ वजसे ११ वजे तक ३ वन्टे शाम्त्रार्थ होगा।

४-शाम्त्रार्थ लिग्वित ही होगा और नो लिखा नाय वही पदकर पव्चिक (उपस्थित श्रोतृमण्डल)को सुनाया नाय।

५-शाम्त्रार्थका प्रारम्भ २१ जुलाई मन् १९१७सं होगा, यदि किसीको तारीख बटलनी हो तो शास्त्रार्थकी निश्चिततारीखसे तीन टिन पहिले सूचना देवे अन्यथा दूसरेपक्षका हर्जाना देना पडेगा।

६—मभापति उभय पक्षका एक ही होगा और वह आर्य-रुमानी ही होगा।

> ७-म्थान आर्यसमानका मन्टिर ही होगा । ८-प्रवन्य आर्यसमानकी तरफले ही होगा ।

पाउको ! चौंय नियमके अनुसार लिखित शास्त्रार्थ इसी-लिये रक्का गया था कि कोई पक्ष अपने वचनको अन्यथा (बडल) न कर सर्के परन्तु सभापति महोदयन ज्ञास्त्रार्थके प्रथम दिवस उप-र्युक्त निश्चित नियमका भंग कर मौखिक वक्तत्य रखनेके लिये विशेष अनुरोध किया, जब एक नियम "शास्त्रार्थका अक्षर प्रत्य-क्षर ठीक २ लोगों तक पहुंच जाय उसमें किसी प्रकारकी फरफार न हो इस उद्देश्यसे उभयपक्ष से मान्य हो चुका था फिर क्या कारण था कि निश्चित नियमको तोडाजाय। परन्तु ये सब बातें शास्त्रार्थको टालनकी थी।

जैन मित्रमण्डल इस बातको समझ गया और उसने उनके इस आग्रहको भी स्त्रीकार किया अर्थात् चौथा नियम इस रूपमें तय हुआ कि दोनोंनरफसे १० मिनिट लिखाजाय और. ९ मिनिटमें सुनाया जाय, तथा मौिखक लोगोंको समझार्या जाय। पूर्व नियमके अनुसार शास्त्रार्थ यद्यपि २१ जुलाईस होना चाहियेथा परन्तु आवस्यकीय कार्यवश विद्वानोंके तार आजानेसे इसी ६ वें नियमके अन्तर्गत नियमके अनुसार शास्त्रार्थकी नारीख उभयपक्षसे २९ जुलाईसे ३० जुलाई तक रक्ष्वी गई।

६ ठा नियम यद्यपि शास्त्रार्थकी दृष्टिस ठीक नही है। उत्तम तो यह था कि कोई उभयपक्षसे भिन्न तीसरा ही निष्पक्ष विद्वान् समापित बनाया जाता अथवा जैसे आर्यसमाजी सभापित बनानेका आग्रह आर्य समाजको था वैसे दूसरे पक्षसे भी होना स्वामाविक था अथवा इमप्रकारके आग्रहमें दोनों ओरसे दो सभाष्यक्षोंका होना आवत्त्यक था। परन्तु आर्यसमाजका यह आग्रह कि सभापित एक ही हो और वह आर्यसमाजी ही हो, विदित कराता है कि आर्य समाज ऐसी २ असंगत बातोंसे शास्त्रार्थको टालना चाहती है। परन्तु जैनियोंको शास्त्रार्थ कर तत्त्वनिर्णय करना अभीष्ट था इस-लिय आर्यसमाजके इस आग्रहको भी सहर्ष स्वीकार कर लिया, परन्तु खेट इनना है कि जिस दृष्टिसे आर्यसमानके महोटय उभय-पक्षसे सभापित टहाये गये थे उस दृष्टिसे उन्होंने कार्य नहीं किया । नियेध करनेशर भी उन्होंने अपनी बैठक अपने बक्ताकें पास ही रक्ती, दूसरे वे सभापित होनेपर भी बहुतसी बातोका उत्तर स्मयं आर्यसमानकी हैसियतसे देते थे इतना ही नही किन्तु उन कतिपय बृद्योंके सिना बाकी सन तरह शान्ति रही, और इसे दिन उपग्रक्त दोनों विषयोंगर मानन्द शान्त्रार्थ समाप्त हुआ। दोनों नरफके विद्वान् लिखते समय कागजके नीचे मलट लगाते थे। इसिट्ये १ पत्रपर लिखनेसं दो कापिया हो जाती थी।

इस प्रवन्त्रसे एक अक्षर भी बढाने घटानेका किसीको अवकाश नहीं ग्हमका है। दोनो पक्षोका लिखित शास्त्रार्थ ज्योका त्यों पाठकोंके समक्ष है। शास्त्रार्थक समय जो ४००० चारहजार जनता इक्द्री होतीयी उमने तो शास्त्रार्थका परिणाम निकाला ही होगा, पाठकगण भी हमांग विशेष अनुरोधसे इस शास्त्रार्थपर पूर्ण विचार करेंगे। और दोनों तरफके विद्रानोंकी युक्तियोंपग सूक्ष्म दिष्ट टाउकर निर्णय करेंगे 'ऐसी प्रार्थना है।

शास्त्रार्थके मध्यकी कुछ वातें।

ता० २८ को हमारी तरफसे एक पत्र सभापित महोदयके पाम भेना गया था कि किमी असभ्य शब्दका प्रयोग न किया जाय अन्यथा पव्लिकका भड़ेक जाना संभव है। तथापि ता० २९ को पंटित नृसिंह्देवनी शास्त्रीन तीर्थकरके विषयमें ऐसे बचन कहे जिनमें कि जनसमाजका बहुत खेद हुआ। और उसी समय एक पत्र हमारी तरफसे सभापित साहेत-के पास भेना गया निसके उत्तरमें उन्होंने पत्रद्वारा अपने शब्दोंको वापिस छेते हुए आगे असम्य शब्द न बोछनेकी प्रतिज्ञा छी। तथा मिष्ट शब्दोंमें क्षमा प्रार्थना कर शिष्टताका व्यवहार किया।

ं शास्त्रार्थके अन्तमें शास्त्रार्थं।

ता० ३०को अन्तिम समय (शास्त्रार्थके समाप्त हो नानेपर)
पं० नृसिंहदेव शास्त्रीने अपनेको पिन्छिककी दृष्टिमें गिरा हुआ
समझकर शान्दिक पाण्डित्य प्रगट करनेके लिये निवेदन किया कि
संस्कृत भाषामें १० पंक्तियां में लिखता हूं और १० पंक्तियां
आप लिखिये और दोनोंको काशी आदिके विद्वानोंके पास मनकर
उनका निर्णय कराना चाहिये इसपर हमारी तरफसे सहर्ष स्वीकारना
होनेपर आपने समवायके विषयपर कुछ पंक्तियां लिखकर दीं, इसी
प्रकार हमारी तरफसे भी दी गई।

पं० नृतिंहरेवजीने ये पंक्तियां लिखीं—जेनानां मते समवा-यसम्बन्धस्य खण्डनं कथिक्षत्तादातम्यसम्बन्धस्वीकारेति मया तदिभमतग्रनथेषु प्रदिशियतुं शक्यते । नृतिंहदेव—शास्त्री दर्शनाचार्यः

हमारे शास्त्रीजीने ये पंक्तियां हिस्तीं—

आईतानां दर्शने गौतमीय नित्येकरूपस्यसमवाय पदार्थस्य प्रतिविधानं कथित्रतादातम्यरूपस्य समवायस्यानेकस्य स्वीकृतिश्च समर्थ्यतेऽस्माभिराईतैः। मक्खनलाल शास्त्री

न्यायालङ्गारः

पाठको ! पं. नृसिंहदेवनीका कहना था कि नैनाचार्य समवाय सम्बन्ध नहीं मानते हैं, हमारे शास्त्रीजीका कहना था कि नैनाचार्य निन्यैकान्त समवायका खण्डन करते हैं परन्तु कथश्चि-त्तादात्म्य अनेक्रूप समवाय सम्बन्धका मण्डन करते हैं इस विषयमें नो पक्तियां प्रमेयकमलमार्तण्ड और प्रमेय रत्नमालाकी पं. ' नृसिंहदेवजीने पढ कर सुनाई तो मालूम हुआ कि वे विचारे इन पंक्तियोंको समझे ही नहीं है, फिर हमारे शास्त्रीजीने उन पक्तियोंका अर्थ स्पष्ट कर दिया, और पिंडत नृसिहदेवजीकी भूलको भलीभाति प्रकट करिटया इस पर भी जब उक्त पण्डितजी हट करने लगे तव तो हमारे शास्त्रीजीने बडे जोरसे ये शब्द कहे कि " यटि पं. नृप्तिहदेवजी उक्त पंक्तियोंको लगाटें तो यह सम्वाद अभी समाप्त हो जाय । साथ ही शास्त्रीजीने उपस्थित श्रोतृमण्डलसे कहा कि आप छोगोंमें जो संस्कृतज्ञ विद्वान् हों वे कृपाकर इन पक्तियोंका आशय प्रगट करहें, हमें उनका कथन सर्वथा स्वीकृत होगा, अन्यथा ये पक्तिया काशी ही भेजकर निर्णय कराई जाय। शास्त्रीनीके इस वक्तत्र्यसे समय जनता समझ गई कि प० रिसिंह-देवजी पक्तियोंको समझे नहीं हैं और कोरा हट करते है।

प० नृतिंहदेवजी तो हमारे शास्त्रीजीके ऐसे प्रभावमें आ गये कि प्रमेयरत्नमालाकी इसवार्तिक (अत्र समवायस्य धर्मिण कथ-स्त्रित्तादातम्यरूपस्याऽनंकस्य च परे प्रतिपन्नत्वात् मुद्रित प्रस्तक पृष्ठ १०४ पंक्ति ९) को देखकर सर्वथा निरुत्तर हो गये और तुरन्त ही अपनी मूलको समझ कर जिन पंक्तियोंको काशीके विद्वानोंके पास भेजना चाहते थे उनको न भेजनेकी सभापित महो-

ट्येंसे प्रार्थना करने लगे,। ठीक ही है भेजते तो व क्या भेजते 2 पीठकाण देख हैं कि हमारे जान्त्रीनीन तादातम्य-अनेक रूप मम-वायकी जैन सिद्धान्तानुसार स्वीकारता ऊपरकी जिन संस्ट्रित पंक्तियों में छिखी है वह प्रमेय रत्नमा छाकी वार्तिकसे सर्वया मिछती है। अन्तमें हमारे जास्त्रीनीने पं० नृसिंहदेवजीसे फिर भी कहा कि मित्र महोद्य पं० नृसिंहद्वनी ! यदि आपको इसं विषयमें कुछ और भी कहना हो तो खुशीसे कहिये मैं उत्तर देनेक लिये तयार हूं । इसपर पं० नृसिंहदेवजी तो कुछ नहीं बोले किन्तु उनकी तर्फसे सभापति वावू रामचन्द्रजीने कहा कि समवाय सम्बन्धके विपयमें जो जन पण्डिनजीने यन्थ प्रमाणसे कहा है वह हमारे पण्डितजीको स्वीकार है और अब व कुछ कहना भी नहीं चाहते है । इस प्रकार शास्त्रार्थसे अतिरिक्त पाण्डिस्य प्रगट करनेके लिये ममवायका झगड़ा उठाकर प० नृतिहदेवजी स्वयं टोनो ओरसे हांस्यास्पद वने । साथ ही समाजको भी उपस्थित जनताकी दृष्टिमें हाम्य भाजन वनांक्रं छोडां । ऐसी उंग्रासीनतामें सभापति साहव उपेस्थित सज्जनींको धन्यवाद देना मी भूल गये, अन्तमें जब देखा कि अब समानमें विलकुल सन्नाटा ही छा गया है तब हमारी ओरसे श्रीमान् साहु जुगेमदिरंदासनी (आनरेरी मजिस्ट्रेट व रईस नजीवावाद) ने उपेस्थित जनताका आभार मानते हुए राजराजेश्रर पञ्चमं जार्ज महोद्य आदिको धन्यवाद दिया । उसी समय जैनं मित्रमङल भी आर्थ मंदिरसे सोछास सहर्ष विटा हुआ। जैनसित्रमंडल

पत्रव्यवहांर---

(हमारी ओरसे)

+ जैन तत्त्वादर्श ग्रन्थ आत्मारामजीकृत तथा आनन्दरामजी-कृत जो ग्रन्थ है वे दिगम्बराम्नाय ऋषि प्रणीत नहीं हैं इसिल्ये हम लोगोंको मान्य नहीं, क्योंकि शास्त्रार्थ दिगम्बर विद्वानोंसे हो रहा है।

हमारे दूसरे पत्रोका कुछ भरा।

व्वेताम्बर प्रन्थोके आधारपर जो अपशब्द आप कह गये हैं व भी व्वेताम्बर सम्प्रदायद्वारा खण्डनीय हैं और वे उसका उत्तर देनेको तैयार भी हैं।

 प० नृप्तिहदेवजी तीर्थकरोंके वारेमे असम्य शब्दोका प्रयोग करते हैं उन्हें आप (सभापित महोदय) केवल विषय प्रतिपादन करनेकी आज्ञा दीजिये । क्योंकि आपका पदस्थ उभयत्र शान्तिके. लिये है ।

अ ता. २९ को प० नृसिहदेवजीने सर्वज्ञ सिद्धिका विषय छोड़कर द्वेताम्बर ब्रन्थके आधारसे श्रीऋषभदेवजीके वेवाहिक सम्बन्धको बतलाते हुए उनके विषयमे सर्वथा मिथ्या अपशब्द कहें थे उन मिथ्या अपशब्दोंको नहीं सहनकर जैन मित्रमण्डलकी ओरसे उसी समय ये पत्र दिये गये है।

पत्रव्यवहार

(आर्यसमाजियोंकी ओरसे)

Ary Kumar Sabha

* चूंकि आपने दिगम्बर जैन होनेके कारण हमारी तरफसे जैन तत्त्वादर्शमेंसे प्रमाण दिये हुओं को अप्रमाणिक कहा है, इस कारण हमने जो २ प्रमाण उक्त प्रन्थमेंसे दिये हैं व अप्रमाणिक समझिये और आयंदा ऐसी गलती न हो। आप कृपा करके अपने माननीय मुख्य प्रन्थोंकी जो छपे हुए हैं सूची मेज दे वड़ी कृपा होगी।

Dated 29-7-17.

Ramchandia

^{*} हमारे पत्रके उत्तरमें सभापति वा. रामचंद्रजीने इस पत्रद्वारा प॰ नृष्टिंहदेवजीके कथनको अप्रमाण बतलाते हुए तथा आयंदा ऐसी गलती न करनेकी प्रतिज्ञा करते हुए दिगम्बर जैन प्रन्थोंकी सूची मागी है।

जैन मित्रमण्डल।

वन्दे जिनवरम् हेरे द्यास्त्रार्थ देहसीं

(ईश्वर क्तृत्व विषयक)

जैन मित्रमण्डलका प्रथम प्रश्न पत्र।

सम्पूर्ण पटार्थेकि साथ बुद्धिमान् कत्तीकी न्याप्ति नहीं है क्योंकि मेत्र विद्युतादिक त्रिना बुद्धिमान कर्ताके मी उत्पन्न होते दीखते हैं । इमिटिये आपका कार्य्यत्व हेतु भागासिद्ध है, यदि आप कार्य्यत्वका अर्थ सावयव करते है तो सावयवके अधिकसे अधिक चार अर्थ हो सकते हैं-अवयववृत्ति, अवयवोंसे बना हुआ, विकारी-पना, प्रदेशीपना । यटि अवयव वृत्ति सावयवका अर्थ किया जाय तो अवयव सामान्यसे अनैकान्तिक हेत्वाभास होगा, यदि सावयवका अर्थ अवयवोंसे बना हुआ किया जाय तो साध्यसम-हेत्वामास होता है, प्रदेशीयना अर्थ करनेमे आकाशमे अनैकान्तिक हेत्वामास होता है, और यदि विकारीपन अर्थ किया जाय तो ईश्वरके साथ ही अनेकान्तिक टोप आता है क्योंकि विकारीपन और कत्तीकी व्याप्ति है इस प्रकार कार्यत्व हेतु असिद्ध है। दूसरे कार्य्यत्व हेतुमें जो कुम्भकारादि दृष्टान्त है वह साध्य विकल है क्यों कि आपका साध्य अशारीर सर्वज्ञ कत्ती है और कुछाछ शरीर अल्पज्ञ है। इसिंछिये कार्य्यत्व हेतु सशारीर अल्पज्ञ कत्तीको ही सिद्ध करता है इसलिये आपका कार्य्यत्व हेतु विरुद्ध हेत्वामास है।

इच्छा रहित होनेसे ईश्वर सृष्टि कर्ता नहीं होसकना है, न्योंकि विना कर्मनलके इच्छा होनी नहीं। ईश्वर कर्मनल रहिन है इसलिये उसकी इच्छा नहीं होसकती है। और इच्छाके विना वह मुक्तात्माके तरह कार्य्य भी नहीं कर सकता है इस प्रकार चारों हेत्वामास प्रसित होनेसे आपका कार्यत्व हेतु ईश्वरमे कर्तृना सिद्ध नहीं कर सकता है।

आर्यकुमार सभाका प्रथम उत्तर पत्र।

जो कार्य होता है वह अवस्य ही बुद्धिमान कर्जासे जन्य होता है जैसे कि घटपटादि कार्य हैं, कार्यत्व हेतु भागासिद्ध इस लिये नहीं कि यावत् अन्य पदार्थीमें पाया जाता है, वार्यत्वका अर्थ प्रागमान प्रतियागित्व मानते हैं इन लिये गेव सन आपके दोप खण्डित हो गये, विकारीपन तथा कर्जाकी ज्याप्ति सिद्ध नहीं होती किन्तु कार्यत्वकी कर्जासे ज्याप्ति हैं कर्जा कोई विकारी ही अथवा अविकारी हो इनसे उक्त हेतु असिद्ध नहीं हो सक्ता, जन्यत्वके साथ शरीरपनका विशेषण असमर्थ है इस लिये विरुद्ध नहीं जैसे इच्छा रहित आपके वीतराग तीर्थद्वर मी उपदेशके प्रति कर्जा हैं वैसे ईश्वर भी, परन्तु हमारे ईश्वरकी इच्छा स्वामाविक तथा शुद्ध है मलिन नहीं, इस लिये उक्त दोष नहीं। सन हेत्वा-मार्सोका उत्तर हो चुक्तनेसे कार्यत्व यथार्थहेतु है, हेत्वामास नहीं।

जैन मित्रमण्डलका द्वितीय पश्च पत्र।

दृष्टान्त उसीका दिया जाता है जिसमें साध्य अंश हो। कुम्म-कारमें साध्य अंश नहीं है, प्रत्युत विरुद्ध साध्य होनेस विरुद्ध हेत्वाभास नामका दोष तद्वस्य है, कार्यस्य हेतु घासादि वनस्पतियों में नहीं जाता है इम छिये भागासिद्ध दोष तद्वस्य है। जो कर्ना होता है वह विकारी होता ही है क्योंकि सद्वस्तुका अन्यथा होना ही विकार है, ईश्वर जीव भिन्न २ कार्योंको करता है तो विकारी अवस्य है। तीर्थकरको हम विकारी स्वीकार करते हैं, स्वामाविक दशामें उन्देश नहीं देते किन्तु उपवेश देते समय वे शरीर सिहन है इस छिये असिद्ध दोष बराबर तद्वस्थ है। उसकी निर्मल यदि इच्छा है तो वह दिस्द्र व रागी जीवोंको क्यों पैदा करता है । यदि उसकी इच्छा नित्य है तो एकसे कार्य्य होना चाहिये। यदि उसकी इच्छा नित्य है, तो एकसे कार्य्य होना चाहिये। यदि सिन्न २ इच्छा मानोगे तो एक समयमें हो नहीं सकती कौर एक एक इच्छासे नाना कार्य्य हो नहीं सकते और दुनियांमें नाना कार्य्य देखे जाते हैं प्रत्यक्ष क अनुमान वाधिन हेत्वाभास तद्वस्थ रहा।

आर्य कुमार सभाका हितीय उत्तर पत्र-

यद्यादि दृष्टान्तों में कार्यत्व तथा क्तृनन्यत्व दोनोंकी ज्याप्ति पाये जानसे दृष्टान्तिसिद्ध नहीं, तृण धासादि वनस्पतियों में कार्यत्व स्पष्ट २ स्वीकृत है इमिलये भागासिद्ध नहीं क्यों कि उन्ही में कार्यत्वसे कर्तृजन्यत्वकी सिद्धि अनुमान प्रमाण सिद्ध है अत ईश्वरकी सिद्धिको निष्प्रमाण कथन करना नहीं वन सकता, कर्ता विकारी ही होता है इसका उत्तर आ चुका है जो प्रत्यक्ष हो वहीं होता है तो तुमने अपने पिना तथा तीर्थकरों को पैदा होते क्या देखा है थे और देखा होना वन नहीं सकता इससे क्या आपके पिता तथा तीर्थकरों को न माना जाय १ प्रत्यक्ष योग्यमे प्रत्यंक्षकी वाधा है हो सकती है, न्यायकी देखीका भी ध्यान करो अन्यथा सव

सिद्धान्त आपका खण्डित हो जायगा। आपके तीर्थर विकारी होनेसे सदुपदेश करनेके योग्य नहीं। रथ्या प्रस्पकी माति जान लो सर्व शक्तिमानमें इच्छाओंका दोष नहीं लग सकता कर्मानुसार फल देनेसे दु:खी आदिका दोष नहीं, मेरे समाधान ठीक होने पर भी आपने मेरे दिये दोषोंका परिहार नहीं किया। घड़ी टक २ किसी चेतनके नियमसे करती है वैसे ही पृथिन्यादिक भी बुद्धिमान् चेतन कर्ती सापेक्ष ही सिद्धं हो गये।

जैन मित्रमण्डलका तृतीय प्रश्नपत्र।

घासादिकोमें कार्य्यत्वका निषेध कहा करते है किन्तु कार्यकी कारणके साथ व्याप्ति है निक सर्वत्र कर्ताके, इस लिये भांगासिद्ध दोष बराबर चला जाना है। यदि घासादिकमें ईश्वर है तो किम प्रमाणसे १ खेद है आपने घासादिकमें कार्यत्व सिद्ध करते हुए भागासिद्ध दोपको ही नहीं समझा । क्योंकि कार्य्यत्वका हम निषेध नहीं करते किन्तु सर्वज्ञ कर्नीका, दूसरे परोक्षपदार्थीका भी हम निषेध नहीं करते हैं, पिता प्रत्रका सम्बन्ध अनादि प्रत्यक्ष सिद्ध है, उसमें कोई बाधक प्रमाण नहीं है किन्तु घासादिमें आपका ईश्वर कुछ भी कार्य नहीं करता दीखता है इसिछये उसे सप्रमाण सिद्ध करिये जो विकारित्व ईश्वरमें वताया गया था उसका कोई उत्तर नहीं। जब कर्मानुपार ही आपके कथनानुसार फल होता है तो ईश्वर वीचमें क्या करता है। यदि ईश्वरका कार्य परोक्ष दृष्टिसे बिना किसी प्रमाणके मान छिया जाय तो हरेक पदार्थको ही परोक्ष कारण मान सकते हैं, यदि कुम्हारको दृष्टांत मानकर सबका कर्ता ईश्वर मान छिया जाने तो नैहके सींगको देख आर्य मनुष्योंके भी

सींग मान लेना चाहिये, अभीनंक नाना इच्छा और एक इच्छाका कुछ भी उत्तर नहीं हुआ है, ईश्वरकी इच्छा क्यों पैदा होती है इसका भी कुछ उत्तर नहीं हुआ। सर्व शक्तिमान ईश्वर हैं तो बुरे कार्य क्यों होते हैं ²

आर्यकुमार सभाका तृतीय उत्तरपत्र।

घासादिकमें कार्यत्व स्वीकारसे बुद्धिमतकर्तृजन्यत्व सिद्ध किया गया। कार्यकी बुद्धिमत्कत्तीके साथ व्याप्ति सिद्ध कर चुका हूं। आपने कोई ऐमा दृष्टात नहीं दिया जो विना बुद्धिमान् कत्तांसे जन्य हो। घासादिमें ईश्वर अनुपान सिद्ध है, परोक्षका निषेध नहीं करते तो परोक्ष ईश्वर भी अपने मान लिया। पिता पुत्रका सम्बन्ध अनाटि प्रत्यक्ष सिद्ध जैसे वैसे ईश्वरका नगत् उत्पन्न करनेमें भी मम्बन्ध जाने। बासादिमे ईश्वर नियन्ता होनेसे निषिद्ध नहीं हो सकता । ईश्वाके विकारत्व दोपका परिहार कर चुका हू। जड कमेंकि स्वयं फल नियमसे न वन सक्तनेपर ईश्वर सापेक्ष कर्म है जैसे आपके शरीरमें रोमादि उत्पन्न होनेसे आत्मा सिद्ध है वैसे घासादिमें ईश्वर होनेसे उत्तित्त आदि सिद्ध जानें। सर्वे शक्तिमान ईश्वर न्याय पूर्वक पापोंसे रोकता है ऐसा न माननं रर आपके तीर्थकरों पर भी समान टोप रहेगा। बेलके सीगसे प्ररुपिक सींग क्यों नहीं यह विपम कथन है परन्तु कार्थ विना चेतन कर्ताके कोई नहीं होता अनन्त शक्ति परमात्मामें इच्छा स्वभाव सिद्ध कार्य करती है जैसे आपके वीतराग तीर्यद्भ करों में उपदेश करनेकी इच्छा होती है पर वे दोषी नहीं। वैसे ही परमात्मामें भी जानो यही समाधान पार्पोके विषयमें जानिये।

जैन मित्रमण्डलका चतुर्थ प्रश्न पत्र।

सबसे पहले आप अप्रतिभानामक निग्रह स्थान प्रसिद्ध है क्योंकि हमने भागासिद्ध वाधित और सावयवत्व रूप कार्य्वत्वके अर्थो द्वारा अनैकान्तिक दोप दिये थे उसका आपने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, घातादि जो हमने व्यभिनार स्थान नताए हैं उन्हींमें ही आप विना विसी प्रमाणके ईश्वरकी कर्तृता मानते हैं। यदि इसी यकार व्यभिचार स्थलको प्रतिज्ञा वाक्यमें हे लिया तो. दुनियाँमें कोई व्यभिचारी नही ठहर सकता है फिर अयोगोलक धूपदन् अग्नैः यहांपर भी सद्धेतुना सिद्ध हो नावेगी । परोक्ष पटार्थका स्वीकार करनेसे यह बात कैसे मान ली जावे कि ईश्वर मी है। जिस परोक्ष पदार्थका:प्रभाण है वही मान्य हो सकता है। पि ग पुत्रमें जन्यजनक सम्बन्ध है इतिहए मान्य है परन्तु घासादित में किस प्रमाणसे ईश्वर क्तीसिद्ध होता है। यदि विना प्रमाणके माना जावे तो गधेके सीग आकाशके फूल भी मानिये। जिस अनुपानसे आप वासादिकमे क्ती सिद्ध करते हैं उसीमें तो हम हेत्राभास दोष देते हैं।

सर्वशक्तिमान ईश्वरपर यह दोप आता है कि संसारमें अनर्थ होते हैं उनका भी वही कर्ता है। हमारे तीर्थकरों में यह दोप नहीं आता, क्योंकि हम उन्हें कहां मानते हैं।

इच्छा ईश्वरके क्यों पैदा होती है ² और वे नाना हैं या एक इसका भी उत्तर नहीं ।

आपने प्रागमाव प्रतियोगित्व कार्य स्वीकार किया है सो पहले पृथ्वी सूर्यादि पदार्थीका अभाव सिद्ध की निये। जब संसारमें कुछ भी नहीं था तो इच्छा पहले क्यों हुई ² इच्छा भी कार्य है, वह किस इच्छासे हुई, इस प्रकार अनावस्था दोप आता है। यदि कर्भके निमिक्तसे इच्छा हुई तो पहले जीव कर्भसिहत कहां है और जीवोंके कर्मोंसे ईश्वरके इच्छा हुई और ईश्वरकी इच्छासे जीवोंने कार्यद्वारा कर्म पेटा किये इसलिये अन्योन्याश्रय दोप भी आता है।

आर्य कुमार समाका चतुर्थ उत्तर पत्र।

परोक्ष पटार्थ ईश्वर भी अनुमान प्रमाणसे सिद्ध किया। अप्रति-भानियह स्थानको उद्भावन करनेसे आप निरनुयोज्यानियोगके पात्र चन गए हो। घासादि व्यभिचार स्थल हो ही नहीं सक्तने, क्योंकि उनमें काव्यत्व, बुद्धिनत्कर्तृजन्यत्वकी व्याप्ति सप्रमाण सिद्ध कर चुका हूं जैसे आप अपने तीर्थकर तथा अपने पिनाके परोक्ष जन्मको अनुमान सिद्ध मानते हैं क्योंकि आपने पिना तया तीर्थक्वरोंके जन्मको नहीं देखा वैसे ही ईश्वर भी परोक्ष हे उसे अनुमान सिद्ध जानो। हेत्वाभासोंका परिहार हो चुका। सुटन दृष्टिसे देखों सर्व याक्तिमान्में उच्छा स्वभाव सिद्ध है अनर्थका परिहार कर चुका हू, यृथिव्यादिकोंका उत्पत्तिसे पूर्व प्रागमाव सिद्ध है इच्छा ईश्वरमें उत्पन्न नहीं इसलिए इच्छा ईक्षण ईश्वरमें अनादि है, कर्मादिके विकल्प उक्त रीतिसे परिहृत है, जैसे कि आपके तीर्थकरोंके उपदेशमें दिखा चुका हूं मेरे किसी आक्षेपका उत्तर नहीं आया।

जैन मित्रमण्डलका पञ्चम प्रश्न पत्र।

परोक्ष ईश्वरको आपने कर्ता माननेमें जो हेतु दिया या उसमें हमने चारों हेत्वापाद दिये हैं आपको उसका एक मी उत्तर नहीं सूझा इमिल्टिए उत्तरस्य अप्रतिपत्तिरप्रतिमा, इस लक्षणसे आप्रतिभा-नामक निग्रह स्थान आपपर तद्वस्थ है। श्री तीर्थकरत्व नाम धर्म विशिष्ट और शरीर सहित है इस िए उनका दृष्टांत देना विषम है क्योंकि आपका ईश्वर संशरीर नहीं है। पिताको प्रत्र यदि न देखे तो दूसर छोग अवश्य देखते हैं। ईश्वरका कभी किसीको आज तक, प्रत्यक्ष नहीं हुआ उसी प्रत्यक्षसे उसमें वाधा आती है इसिछए प्रत्यक्ष प्रमाण वाधित कर्श होता है।

यदि सर्वशक्तिमान्में इच्छा स्वभाव सिद्ध है तो सदा एकसे ही कार्य होने चाहिये, सदा पानी ही पड़ता रहना चाहिए सदा गरमी रहनी चाहिये। यदि वह बदलती है तो अनित्य हुई। स्वतन्त्र पुगवकी इच्छाको कौन ईश्वरसे बलिष्ठ बतलाता है ?

र्ज्ञामें जो अन्योन्याश्रय दोष दिया था उसका वारण नहीं किया इस लिये अप्रतिभा निप्रह स्थान आप पर तदबस्थ है।

ईश्वरकी इच्छा बद्छन्। स्वाभाविक है या वैभाविक ?

कार्य्यत्वका अर्थ प्रागमावपितयोगित्व किया है उसमें सूर्य चन्द्रादिका अभाव कव था !

आर्थ कुमार सभाका पश्चम उत्तर पत्र।

चारों हेत्वाभासोंका परिहार कर देनेपर भी आप वार वार उन्हींको प्रकारते हैं फिर भी देखिये पृथिज्यादि कार्योंमें कार्य धर्म पाय जानेसे हेतु सिद्ध है असिद्ध नहीं। सत्प्रतिपक्ष देष इस-क्षिए नहीं कि शारीरिवशेषण देनेका कोई फल नहीं अर्थात पृथि-ज्यादिकं कन्नेजन्यं शारीराजन्यत्वात् हेतुमे प्रागमावाप्रतियोगित्व उपिष है इसिए आपका अनुमनि सोपाधिक होनेसे दूषित है।

जन प्रागमावप्रतियोगित्व ही कार्यत्व है तो उसमें, आपका कोई हेत्वामास नहीं रहता इसलिए उक्त विकल्प सन आपके कट गये। तीर्थंकर शरीरी है तोमी आप उनको प्रत्यक्ष नहीं पाते और उनके होनेमे क्या प्रमाण है द दूसरी बात यह है कि आपने मान लिया तथा लिखदिया है कि तीर्थंद्वरको हम विकारी ही स्वीकार करते हैं परन्तु प्रमेयकमलमार्चण्डके प्रथम परिच्लेंद्रकी समाप्तिमें 'निर्दोष परमार्थविषयं' इत्यादिसे उनको दोषरहित कहा। जो विकारी होने वह दोषरहित कैसे हो वतलाइये आपका कथन सचा या प्रभाचन्द्रका कथन सचा है इसमे एक अवश्य ही झूठा सिद्ध होगा। जनतक आप इमका उत्तर नहीं देते तन तक आपके शेष आक्षेपोका उत्तर नहीं दिया जायगा।

जैन मित्रमण्डलका षष्ठ प्रश्नपत्र।

चारों हेत्वाभासोंका वारण केवल कथनमात्र और अनुमान चाक्य बोलनेसे नहीं हो जाता है। कार्यत्व हेतु ही पहिले असिद्ध है सूर्य चन्द्रमादिमें वह नहीं रहता है क्योंकि वे जन्य नही है, कार्यत्व वहा जाता ही नहीं।

जिनने कार्य हैं वे सब सरारीर और असर्वज्ञके देखे जाते हैं इसिलये कार्यत्वविरुद्ध भी है। रारीराजन्यत्व और निःकर्मत्व हेतु-ओंसे सत्प्रतिपक्ष दोष भी दिया गया है इसिलये असत्प्रतिपक्ष भी है। प्रत्यक्ष वाधित तो है ही फिर आपने कैसे हेत्वाभासोंका खण्डन 'कर दिया ?

आपने पृथिव्यादिक कर्तृजन्य श्राराजन्य असत्प्रतिपक्षमे

प्रागमावापत्तियोगित्वे उपाधि दी सो ठोक नहीं है क्योंकि उपाधिका लक्षण आपके 'ही नयायदर्शनमें साध्यस्य व्यापकों यस्तु हेतोरव्यापक-स्तथा सडपाधिर्भवेत्, इस स्वसिद्धान्तसे च्युत होनेसे अपसिद्धान्त नियह स्थान पतित होते हैं। श्री तीर्थकर शरीर सहित हैं दोषका-अर्थ हमारे शास्त्रोंमें ज्ञानावरणादि चार कर्म हैं वे उनके नहीं हैं इस्लिये वे निर्दोष हैं। विकार नाम सत्वन्तुका अवस्था बदलनेका है। ऐसा परिणमन तीर्थं कर में है और तीर्थं करत्व नाम कर्मकीं उनको पराधीनता भी है. सर्वथा कर्मरहित सिद्ध उपदेश नही देते। विकारीका जो अर्थ आप दोष करते हैं वह मोहनीपनं होने तीर्थ-करमें नही हैं । देखो समन्तभद्र कृत देवागमकी वसुनन्दिकी टीका-प्रभाचन्द्र आचार्य्य आदि हमारे कथनमे कोई विरोध नहीं किन्तु आपकी समझमे नही आया है। ईश्वरेच्छा स्वामाविक है या वैभा-विक और प्रागमावप्रतियोगि सूर्य चन्द्रादिकमे नहीं है इसका कोई उत्तर आप नहीं देसके हैं।

आंर्य कुमार सभाका षष्ठ उत्तर पत्र।

आपके महावीर सरारीर हैं तो वह दूसरे पुरुषोंकी भांति दोष वाले और अप्रमाण ठहरते हैं, ईश्वरी इच्छा स्वामानिक होने-पर भी सूर्यप्रकारा तथा उसकी उष्णताक समान सर्वत्र एक रस कार्य करती है। वस्तुओंका स्वमाव अपना २ बनारहे उसमें कोई दोण नहीं। जैसे कारण निमित्त उपादान मानते हो वैसे ईश्वर भी पृथ्वयादि पदार्थीके प्रति निमित्त कारण सिद्ध होगया और एक तरीकेसे आपने मान लिया। हमारे सिद्धान्तमें ईश्वर समर्थ कारण है तथापि वस्तुओं के स्वभावको अन्यथा नहीं करता किन्तु निय-मानुसार ही उत्पत्ति आदि करता है। कमसे शरीरादिमें सो बीनाकुर न्यायकी भाति अन्योन्याश्रय दोप नहीं आता ऐसा आपके आचार्य भी अरंग न्याय प्रन्थों में मानने तथा आपने पिना पुत्रके मम्बंधमे भी इसी अभिनायसे उत्तर दिया था, मैं फिर आपसे पूछता हूं कि आपके ती र्यकर उपदेश करने के समय विकारी होते हैं वा नहीं 2 अगर विकारी दोप वाले हैं तो आप्त न रहे फिर उनका उपदेश कैसे प्रमाण है 2

और जो आप चारों हेत्वामास बार २ कहते इनका खण्डन कड़िवार पीछे करिटया है। शरीरी और असर्वज्ञके कार्य वहीं है जो घटनटाटि परन्तु जीवोंकी शक्ति न होनेसे प्रथिज्यादि सर्वज्ञ कक्तीके ही सिद्ध होते हैं।

कार्यत्व हेतुके प्रत्यक्ष वाधित कहनेसे आप भूछ करते हैं।
मैनं उत्तर देविया था कि प्रत्यक्ष योग्यमे ही उक्त
वाधा हो सकती हैं। आपने अपने पिताके जन्मको
प्रत्यक्ष नहीं देखा इसका कोई आजतक उत्तर नहीं आया।
तीर्थकर आवरण रहित तभी होंगे जब उनमे आवरण मानोंगे। आवरण
माननेसे वह अज्ञानी अनाप्त ठहरते हैं फिर उनका उपदेश ठीक
नहीं। यदि अवस्था वदछना ही विकार मानोगे तो आपके मुक्तकी
मी अवस्था वदछती रहेगी। एकरस न रहनेसे वह भी अन्य पदार्थोंकी भाति दोपवाछे ठहरते हैं। आपके सब हेत्वाभासादिको काट दिया
गया फि(वाकी कोई हेत्वाभास नहीं रहा। आप प्रमे० से विरुद्ध
कथन करने पर अपसिद्धान्त दोपके भागी हुये हैं।

जैन मित्रमण्लका सप्तम प्रश्न ।

अशरीरीके इच्छा प्रयत्न होते हैं इस वातको आप किस प्रमाणसे सिद्ध करते हैं ! ईश्वरकी इच्छा स्वामाविक है या वैमाविक इसका आपके पास कोई उत्तर नहीं ।

हमने पूछा था ईश्वर समर्थ कारण है या असमर्थ उपादान इसका कोई उत्तर नहीं।

विरुद्धादि हेत्रामासोंका कुछ भी उत्तर न देकर दूपरी वार्तोमें वला जाना आपको मतानुज्ञानिग्रह स्थानमें डालता है।

तीर्थकर सरारीग होनेसे सदोष हैं ऐसी व्याप्ति नहीं है, रारीरकी दोषके साथ व्याप्ति नहीं है किन्तु दोषकी व्याप्ति मोहादिक साथ है इसको पहिले भी कहा गया है फिर पिष्टपेषण करना व्यर्थ है। खेद तो यह है कि आप अरारीर होनेसे ईश्वरको कर्जी मानते हैं इसमें दिये हुए दोषोंका वारण नहीं कर सके, और विषयान्तर पर चले जाते हैं।

हम पूछते हैं रारीर रहित ईश्वर कैसे कार्य करता है इसका क्या उत्तर है तब आगे चलिये। स्वप्तमें आये हुए दोषोंका उत्तर न करके विषयान्तर चले जाना मतानुज्ञा निप्रहस्थानमे जाते हैं।

प्रमानन्द्र स्वामीके विरोधका परिहार करनेपर भी अर्थात् विकारका और दोषका हमारी परिभाषामें एक अर्थ नहीं है। विकारका लक्षण गुण विकार पर्धाय, पर्धाय हैं। तीर्थकरमें पर्धाय प्रतिक्षण होती है इस लिये वे विकारी है। परन्तु पर्धाय शुद्ध और अशुद्ध दो प्रकारकी होती है, मोह विशिष्ट जीवकी पर्धाय अशुद्ध होती है। तीर्थकरके मोह विशिष्ट पर्धाय नहीं है इस लिये शुद्ध पर्याय है। निर्मल जलकी लहरोंकी तरह हम मोह और दोपकी व्याप्ति पहिले भी कह चुके हैं। परन्तु आप तो पिष्टपेपण ही करते जाते हैं और कथा विच्छेट करते हैं इस लिये विक्षेप निप्रह स्थानपाति हैं। यदि ईश्वरेच्छा स्वाभाविक है तो बदलनी नहीं चाहिये। यदि बदलती है तो किस कारणसे 2 और वह एक है या अनेक 2 कुछ भी उत्तर नहीं।

ईश्वर सक्तर्मा अल्पन है, इच्छा प्रयत्नवान होनेसे नो नो इच्छा प्रयन्नवान होता है वह मक्तर्मा अल्पन होता है इस लिये ईश्वर भी मक्तर्म और अल्पन होना चाहिये, इसका उत्तर दीनिये।

नमर्थ कारणोंमें अन्वय व्यतिरेक चटना है, ईश्वरीय कर्तृतामें अन्वन्ययितिरक घटाइये।

आर्य कुमार सभाका सप्तम उत्तर पत्र।

ओर जो आपने ' ईश्वर सक्तर्म सशरीरश्च इच्छा प्रयत्नवत्वात इन अनुमानसे वैदिक ईश्वरको शरीरधारी सिद्ध करनेको चेष्टा की है मो ठीक नहीं क्योंकि उपमे अल्पज्ञानवत्व उपाधि है। जहां २ अल्पज्ञान होने १८ इच्छाप्रयत्न है वहा २ शरीरपना रहो परन्तु इच्छा ईक्षण तथा नित्यप्रयत्न वालेमें शरीरका होना आवश्यक नहीं। वह सर्वशक्ति होनेके बिना शरीरके भी अपने कार्यमें समर्थ है।

हत्वामासीका कई बार उत्तर देनेकर भी आपके आग्रहसे पुन. उत्तर किलता हूँ ।

आपने जो कार्यत्वमें चार विकल्य किये अवयववृत्ति आदि सो तत्र वन सके । यदि में प्रागभाव प्रतियोगित्व न मानूं , समें आपने एक भी हेत्वाभास नही दिया। देखिये पृथिव्यादिकोंमें कार्यत्व है अतः उसमें स्वरूग सिद्ध नहीं इससे आपका वचन कट गया । नाना इच्छा अल्पज्ञों में होती हैं, सर्व शक्तिमान्में यह दोष नहीं आता । वह एक इच्छासे भी सब कार्य नियमानुसार कर सकता है। हमने आपके सब उत्तर दे दिये तो भी आप पूनः २ पिष्टपेषण करनेसे नहीं डरते । भेरे उत्तरोंको न समझनेसे आप अप्रतिभानिग्रह-स्थानमें आगये । मेरे अपिसद्धान्तका कोई उत्तर आपसे नहीं बना और अनिप्रहर्मे मतानुष्रह कथन करनेसे आप निरनुयोज्यानुयोग निग्रहस्थान सहित हैं जैसे मोहकी व्याप्ति दोवोंके साथ मानते हो वैसे शरीर वालेके साथ दोष वालेकी भी व्याप्ति बनी रही। फिर आपके तीर्थकरोंपर वही आक्षेत्र बना रहा इसका उत्तर आपसे नहीं बना । शो क ! कि आप मेरे लिखे हुएको ठीक २ सावधान होकर नहीं पढते ऐसा माळूप होता है अत बार २ अपनी रटी रटाई अवारत ही पढदेते हैं। आप जो शरीर रहिन ईश्वरका कार्य पूछते हैं उसका उत्तर यही है कि सर्वशक्तिमान होनेसे उसको शरीरकी अपेक्षा नहीं ''तीर्थंकराः दोषविशिष्टा. शरीरवत्वात् रध्या प्रहषवत्" इस अनुमानसे आपके तीर्थकर दोषवाले होनेसे आप्त नहीं फिर कैसे प्रमाण हुए, आपसे उत्तर नहीं हो सकता। ईश्वरेंच्छा एक होनेपर भी उसके कार्य मुर्यकी भांति तथा गेंद्रके प्रक्षेपकी भांति दोष नहीं।

जैन मित्रमण्डलका अष्टम प्रश्न पन्न ।

ईश्वरेच्छा नित्य है या अनित्य ? और ईश्वरका स्वमाव सृष्टि करनेका है तो उसके अलय करनेका स्वमाव उसमें नहीं हो सकना है ' क्योंकि विरुद्ध दो स्वभाव उसके कैसे ? यदि क्रमसे दो स्वभाव उसके माने जाय तो संसारमें कहींपर कोई कार्य उत्पन्न होता है, कोई विगडता है तो ऐसे दो विरुद्ध कार्य नहीं होने चाहिये। जब संपारका यह न्यायसिद्ध नियम है कि माता पितासे पुत्र होता है तो सृष्टिके आदिमें यह नियम कैसे लागू होगा । यदि नियम नहीं माना जाय तो अब जन्यजनक सम्बन्ध बीज वृद्ध न कैसे माना जाता है ।

हमने ईश्वरको सक्तर्भा और अल्यज्ञ सिद्ध करनेके लिये नो हेनु इच्छा प्रयत्नवत्वात् दिया था इसका वारण कुछ भी नहीं किया।

यदि आप कार्यत्वको प्रागमावप्रतियोगित्व करते हैं सो महा-राज पहले चन्द्र सूर्यमें प्रागमाव प्रतियोगित्व सिद्ध कीजिये, अर्थात् मूर्य चन्द्रमा इनकी पहले नास्नि ही नहीं है तो कार्य हेतु उनमे न जानेसे असिद्ध दोप बना रहा इसिल्ये आप पहिले ही हेत्वाभास असिद्ध हेत्वामासका वारण ही नहीं कर सके।

हमने आपसे पृछा था कि एक इच्छासे विरुद्ध नाना कार्य कैमे करता है इसका उत्तर केवल यह कह दिया कि वह एक इच्छासे भी सब कार्य कर सकता है, क्या यह अप्रमाणिक कथन ही पर्याप्त होगा ² इसी प्रकार मेवादिमे ईश्वरकी कर्तृता कथनमात्रसे भागासिद्ध दोपको आप किश्चिन्मात्र भी दूर नहीं कर सर्केगे, केवल ईश्वर कर्ता है इस प्रतिज्ञासे काम नहीं चलता।

महाशय ! पहले असिद्ध टोपको ही दूर की जिये फिर विरुद्धादि दोपोंको हटाना। हम कह चुके हैं कि शरीर और टोपकी टणित नहीं है इसिंटिये शरीरवत्व हेतु व्यभिचारी है।

आर्य कुमार सभाका अप्टम उत्तर पत्र।

कार्यत्व हेतुमें असिद्ध अनकान्तिक पन्त्रनियस भागानिद्ध आदि सब हेत्वामास कटगये यही पृष्ठा था, उत्तर टे दिया, आव बतलावें लोहेकी कीली (कृतुवमीनार) किमने ग'डी दंग्वी है तो भी वह जन्य है ऐसे ही सूर्य चन्द्रादिकको भी जान लो निमे मोह दोपकी व्याप्ति मानते हो वैसे तीर्धकरों में अरीग्यारी होनेसे आपने दोप स्वीकार कर लिये कि आपके मिद्धान्तमें विरोध है।

शरीर होनेका दोप वर्तृजन्यत्वमें देने सो अपः र्वथा न्यायकी शैलीसे बाह्य कहते हैं। हप्टान्तके मन धर्मपक्ष दा साःचनें नहीं पाये जाते। आपका प्रमानन्द्र आचार्य भी प्रमे० २य परि-च्छेद पत्र ७१ में मानता है कि ' न चाजेपचर्याणां माद्यधर्मिण्या-पादनं युक्तं सक्लानुमानोच्छेद प्रसङ्गात् ' हप्टान्तकं सन धर्म दार्ष्टीन्तिकमें नहीं, फिर आपका आक्षय वृथा है।

"चन्द्र सूर्यादयः स्वोपादान कारणिनष्ठ प्र.गमाववन्तः भावत्ये सितजन्यत्वात " घटवत् इस अनुमानसे चन्द्रादिमं प्रागमावप्रतियो-गित्व सिद्ध हो गया अतएवः—

१ ईश्वरकी इच्छा स्वाभाविक है वैभाविक नहीं।

२ ईश्वरकी इच्छा एक है और एकसे भी न्यायपूर्वक प्रव कार्य हो रहे हैं। एकसे भी नाना कार्योका दृष्टान्त देखिये। जैसे एक विज्ञुलीकी लहरसे मकानाँमें रोशनी, पंखा चलना, ट्राम्वेका चलना, पानी खींचना, आटा पीसना, कितार्वे छापना, लोगोंको मारना और वीमारको कमजोरीकी हालतमें ताकत देना आदि कई कार्य पाये जाते हैं इसी प्रकार ईश्वरकी इच्छामें मी जान लें।

जैन मित्रमण्डलका नवम प्रश्न पत्र।

नारों हेत्वाभासोंके अतिरिक्त ईश्वरको कर्ता माननेमें ये मी दोप आते हैं। ईश्वरका कार्योंके साथ देशव्यतिरेक सिंद्ध नहीं हो सकता है क्योंकि ईश्वर व्यापक है। यदि उसका कहीं अभाव होता तो देश व्यतिरेक बनता इसी प्रकार उसे नित्य होनेसे कालव्यतिरेक भी सिद्ध नहीं होता है। किसी समय ईश्वर सर्वत्र है परन्तु कहीपर किसी समय कार्य नहीं भी होता है इसिल्ये अन्यय भी नहीं है। विना अन्वय व्यतिरेकके ईश्वरका कॉर्योंके साथ कार्यकारण भाव नहीं है।

दूसरे—प्रयत्न अन्यापक पटार्थमें ही हो सकता है न्यापकमें नहीं । इक्तर न्याक है इसलिए निष्क्रिय होनेसे वह प्रयत्नवाला नहीं वन सकता है और विना प्रयत्नके कार्य भी नहीं कर सकता है ।

ती सरे — निराकार ईव्वरसे साकार पदार्थ नहीं हो सकते हैं आकाशकी तरह ।

यि इंद्वरच्छा स्वाभाविक है तो वटलनी नही चाहिए लेकिन हम देखते है कि वह किसी कार्यको उत्पन्न करता है और उसीको पुनः नष्ट करता है।

स्वाभाविकके छिए देशकाल आकारके वदलनेका नियम नहीं है —एक इच्छासे नाना कार्य होते हैं इसमें विजलीका दृष्टात विषम

सूर्य चन्द्रमामें जो है वह अनुमान असिद्ध हेत्वाभास यस्त हैं। क्योंकि जन्यत्व उनमें हैं। सिद्धि और प्रागमावसे ज्

लोहेकी कीली प्रा ाँ है। जिनके कि इस प्रतिदियन कार्थ देख रहे है इस लिये इसके कत्तीका अनुमान होता है। सुर्थादि प्रासादादिसे सर्वथा विलक्षण है।

योगियों में क्रमसे दोप रहितकी और शरीर हितकी व्याप्ति है।

आर्यकुमार सभाका नवम उत्तर पत्र।

एक ईश्वरेच्छामें अनेक कार्यों के छिये और दृष्टांत छीजिये— ईश्वरेच्छा एक है परन्तु वस्तुओं के भिन्न भिन्न स्वभावसे और जीवों के भिन्न २ कर्मीसे असर पृथक् २ हैं जैसे आगका असर मोमपर चपड़े-छाख पर मिट्टीके गीछे गोछे पर अछहदा २ है मोम और चपडा पिघछ जाता हैं परन्तु मिटीका गीछा ढेछा सुख जाता है, और जैसे एक सूर्यकी गरमीसे एक वृक्ष सूख रहा है दूसरा प्रफुछिन हो रहा है और जैसे एक वृष्टिसे नीममें कडवा रस आममें मीठा रस हो रहा है और एक बादछसे कोई बीज उग रहा है, कोई सह रहा है। शक्ति एक है छेकिन उसके नतीजे पदार्थों पर भिन्न २ होते हैं बेसे एक ही ईश्वरकी एक इच्छा या ईक्षण शक्तिसे नाना कार्योमें कोई दोप नहीं है। जो ईस्वर कत्ती में अन्वयव्यतिरेकका अभाव कथनसे दोप दिया से। ठीक नहीं । जैसे आपके मातानुनार अमूर्त्तिक सर्व व्यापी तथा अनन्तप्रदेशी आफाशका जीवादि द्रव्योंके अवकाश प्रदानरूप किया में व्यतिरेक न होनेपर भी कार्य कारणभाव है वेसे सर्व ज्यापक ईव्यरका ज्यतिरेक न होने पर भी पृथिज्यादियोंके प्रति कार्य कारणभावमं कोई बाधा नही, जन्यप्रयत्न अन्यापक पदार्थी में होता है। नित्यप्रयत न्याक ईश्वरका ही धर्म है। निराकार ईश्वर भी मर्वशक्तिमान् होनेसे कार्योको उत्पन्न कर सक्ता है और वह निमित्त है उपाटान नहीं । मेरे विजुली दृष्टान्तका आपने कोई परिहार नहीं किया । जब आप कीलीकी उत्पत्ति अनुमानसे मान गये तो फिर ईश्वर भी अनुमानसं सिद्ध है अर्थात् सूर्यादि कीलीकी भांति जन्य होनेसे कर्त्ता सापेक्ष हैं। योगियोंकी अवस्थामें तीर्थकरोंको शुद्ध मानते हैं फिर स्वाभाविक शुद्ध ईश्वरके खीकारसे क्यों 'हिचकते हो ?

जैन मित्रमण्डलका द्दाम प्रश्न पत्र।

चौथा दोप--

ईश्वर पहले ही जब सृष्टिका प्रारम्भ करता है उस समय परमाणुओंसे कैसे कार्य बनाता है र जिस प्रकार कुम्हार घडा बना-नेके लिये दण्ड चक्र डोरा जल आदिकी सहायता लेता है, उस प्रकार ईश्वरके पास उस समय क्या सामग्री थी र यदि थी तो वह किसने बनाई र नहीं थी तो परमाणुओंको कार्यरूप लानेके लिये ईश्वर कैसे समर्थ हुआ ? त्यानंक ईश्वर विमिन्न स्थलों में पड़े हुए परमाणु-ऑमें किस प्रकार किया करता है ? क्या परमाणुओं का आज्ञा देता कि तुम कार्यहर हो जाओ ? ऐसा मानंनसे परमाणुओं ने श्रवण इन्द्रिय और ज्ञानका प्रसंग आता है । आपने जो बादल वगैरहका दृष्टान्त दिवा है वह समर्थ कारणके विषयमें विषम है क्यों कि हमारे यहां उनादान राक्ति हरएक पर्राशमें मिन्न २ है, मेचादि आन्नादिके रस बदलनेमें समर्थ कारण नहीं है तथा पहले भी हमने लिखा था कि मेच विजली आदिकों में अनेक परमाणु हैं और वे भिन्न २ कार्य करते हैं।

कुम्भकारमें साध्याश अशरीरत्व सर्वज बुद्धिनरकर्तृत्व एक अंश भी नहीं घटता है इसिलये साध्य विकल दृष्टान्त और विरुद्ध साधन है। सामान्य अग्निक साथ सामान्य धूमकी व्याप्ति है, कोयले आदिकी अग्निक साथ नहीं। परन्तु यहाँ पर विशेषकर्त्ताको साध्यकोटिमें लाया जाता है इसिलये कुझलमें साध्यांशका एक देश भी नहीं घटता। निराकार ईश्वर साकार पदार्थोंको नहीं रह सक्ता है। ऐसा कोई दृष्टान्त नहीं है। अवगाहन देनेमें आकाश समर्थ कारण नहीं है। आप हमारे सिद्धान्तको नहीं समझकर ही बोलते हैं।

सिंह आदिमें मनुष्योंके विशिष्ट पुष्य पाप जन ये ही नहीं तो विद्रुक्तण सृष्टि मनुष्योंकी कैसे की ?

आर्यकुमार सभाका द्शम उत्तरपत्र।

आप जो लिखते हैं कि सूर्यादि पदार्थों में जन्यत्व नहीं पर कार्य्यत्व है, सो धन्य हो पंदितजी ! क्या कार्य्यपना और जन्य-पना दो हुवा करते हैं ? क्या घट तथा कल्ला कहनेसे दो अर्थ निक्र- छते हैं ? यहां पर आपने भारी भूल की है। पण्डितजी, आप उत्तर-की ज्याकुलतासे और मतवाले वन गये इस लिये चित्तके औरमें लगनेसे आप पर विक्षेप नामक निग्रह स्थान आता है।

आप कहते हैं कि सूर्यादि पदार्थोंमे मकानोंकी तरह शकल न पाये जानसे वह बुद्धिमान् कर्त्तासे बने नहीं यह कथन ठीक नही। सार पदार्थोंकी शक्त भिन्न होती है वर्योंकि उनका कारण भिन्न र है। परन्तु इमसे यह कमी सिद्ध नहीं हो सक्ता कि जड पदार्थोंकी आकृति विना किमी चेतनके वन नाय, और ध्यान करें जिस में परिणाम होता रहता है वह जन्य है। वैसे परि-णामी चन्द्राटि जन्य होनेसे कर्त्तासापेक्ष ही सिद्ध होता है, सर्व-शक्तिमान् ईश्वर विना प्रकृति जीव जो अनादि सिक है किसी कारणकी सहायता अपेक्षिन नहीं, अपनी स्वाभाविक शक्तिसे ही पदार्थोंमें उत्पत्ति आदि कर लेना है। अन नये प्रश्न आरम्भ करते हैं। माल्म होता है कि पहले प्रनोंका समाधान मान गये हो, सृष्टिके आरम्भ-में मनुष्यादि मांचेके ममान बनाये गये पीछे मैशुनी सृष्टिका नियम रक्का यह उत्सर्गाक्वाइ जानो ।

जैन मित्रमण्डलका एकाद्राय प्रभपत्र।

आपने कार्यत्वका अर्थ प्रागभावप्रतियोगित्व किया था उसके अनुसार भी सूर्य चन्ट्रादि पटार्थोमं कार्यत्व सिद्ध नही होता है। क्योंकि उनके अवयव किसी कालमं भी पृथकर नही थे। इसलिये जननक आप उनके अवयव भिन्नर सिद्ध नहीं कर्र्वेगे, तत्र तक आपका प्रागमावप्रतियोगित्व रूप कार्यत्व हेतु सद्धेतु नहीं हो सकता। इसिल्ये हमारा दिया हुआ असिद्ध दोष ज्योंका त्यों रहा । जिमका यरिहार न कर सकनेके कारण आप इघर उधरकी व्यर्थकी वातोंमें समयको पूरा कर दिते हैं । इसिल्ये (अनियमात् कथा प्रसंगो विक्षेप) इस सिद्धान्तानुमार आप ही विक्षेप नामक निग्रहस्थान पाती हो जाते हैं।

आपके कथनानुसार जब जीव प्रकृति ईश्वर तीनों अनादि हैं तो ईश्वर सर्व व्यापक होनेके कारण प्रकृति और जीवसे भिन्न नहीं हो सकता है। और प्रकृतिको परमाणु रूपमें अनादि माननेसे यह प्रश्न होता है कि परमाणु आपसमें मिले हुए हैं या भिन्न रहे। यदि मिले हुए हैं तो अनादि संयोग होनेसे कार्यत्वपना भी अनादि सिद्ध है। इसलिये प्रागंभावप्रतियोगित्व कार्यत्व हेतु असंभव ही है। यदि भिन्न र मानते हो तो प्रल्यावस्थामें एक परमाणु दूसरे परमाणु-से कितने फासले पर रहता है 2

आपने कहा था कि कुंभार अल्पज्ञ है इसिल्ये उसे उपड चक्रादि सामग्रीकी आवश्यकता है परन्तु ईश्वर सर्वशक्तिमान् है इसिल्ये उसे किसी सामग्रीकी आवश्यकता नहीं है। साचेके समान पहले सृष्टि हुई है तो साँचमें भी तो सामग्रीकी आवश्यकता पड़ती है। क्या आप विना उपकरणके किसी प्रकारका साँचा डाल सकते हैं?

विना चेतनके कोई मैटर शकलमे नहीं आ सकता इस विषय-में हम कई वार सूर्य चन्द्रादिकका दृष्टान्त दे चुके हैं। जब तक आप उक्त पदार्थों में प्रागमाव प्रतियोगित्व रूप कार्यत्व मिद्ध न कर सकेंगे तब तक चेतनाधिष्ठित कहना वचनमात्र ही है।

का नार हमें न्याय शैलीसे वाह्य कहना कहा तक

युक्ति संगत है इसका निर्णय विद्वान् छोग स्वय करेंगे ही । इसी-खिये तो लिग्वित शास्त्रार्थ किया गया है ।

दूसरे कुंभकारके दृष्टान्तके विषयमें नो आपने प्रमेयकमल-मार्तण्डका उहेग्व देकर दार्षान्तके सभी धर्मोका दृष्टान्तमे निषध किया है सो महाशयनी कृपा कर वतलाइये सर्वज्ञ अशरीरी ईश्वरको कर्ना साध्य बनाने हुए कुंभकार दृष्टान्तमे कौनसा अग लाने हो / यदि दृष्टान्तमे माध्याग ही घटिन न हो तो उसे, उसका दृष्टान्त ही नहीं कहना चाहिये। यहा पर साध्य सामान्य कर्ता नहीं है। यदि सामान्यक्रांको ही साध्य समझा नायगा तो सभी जीव कर्ता हो जायगे। कोई पुरुष विशेष नहीं सिद्ध होता।

इमलिये जनतक आप माध्य विकल दृष्टान्त विरुद्ध हेत्वाभास तथा सूर्याटिमे असिद्ध हेत्वाभामका कारण न करेंगे तन तक आगे चटना शास्त्रार्थ कोटिसे मर्वथा बाहर है।

आर्य कुमारसभाका एकाद्यम उत्तर।

पं जी, आपने एक वडी भारी भूल की है जो प्रागभावाप्र-तियोगित्व उपाधिम न्यायदर्शनका नाम लिखकर किसी अन्व प्रन्थका प्रमाण कहा जिससे उक्त उपाधिमे दोप भी नहीं आता। मालूम होता है कि न्यायदर्शनका आपने दर्शन नहीं किया। आप स्पष्ट वतलाएं 'माध्यस्य ज्यापको यस्तु हेतोरन्यापकस्तथा । यह न्यायदर्शनमें कहा पाठ आया है स्पष्ट दिखलाइये।

और अब ध्यानसे सुर्ने—

कार्यत्व तथा बुद्धिमत्कर्तृजन्यत्वकी व्याप्ति घटपट आदि उभववादि सम्मत जड़ पदार्थीमें व्याप्ति सम्बन्ध

सिद्ध है जिससे पृथिव्यादि कार्योमें भी कार्यत्वके पाये जानेसे ईश्वरकर्ताकी सिद्धि निर्नोध है इस कार्यत्वहेतुमें स्वरूपा सिद्धि भी नहीं क्योंकि कार्यपना तो सब जन्य पदार्थीमें पाया जाता है वैसे ही सूर्य चन्द्रादि पटार्थोंमें भी। जो आपने कहा कि सूर्यादिके अवयव पृथक्र दिखलाए तभी उनका कार्यपना होगा सो ठीक नहीं क्योंकि कार्यत्व सावित करता है कि इसका अवस्य विनाश भी होगा। जो २ भावकार्य होता है वह अवज्य ही विनाशी होता है फिर स्पष्ट है कि वह जन्य होनेसे चेतनकी अपेक्षा अवश्य रखते हैं। आपने आन तक एक भी तो दृष्टांत नहीं दिया जो त्रिना किसी चेतन कत्तीके बना हुआ हो । जिन सूर्यादिको आप चेतनके बिना जन्य कथन करते हैं वह तो साध्य कोटिमें है, जो अनादि होनेसे ईश्वरको आपने प्रकृति जीवसे अभिन्न कथन किया सो सर्वथा न्याय-के विरुद्ध है क्योंकि जडत्व अल्पज्ञत्व धर्म उनके परस्पर विभेदक हैं परमाणु अवस्थामें प्रत्येक भिन्नर होता है, जैसे कुम्भकारको ढण्डादिकी आवश्यकता वैसे परमात्माको आवश्यकता नही क्योंकि वह सर्व शक्तिमान् है, हां उपादान कारण प्रकृतिमितपण्डके समान है, और जो साचेके विषयमे आपने कहा सो भी ठीक नहीं क्योंकि प्रकृति उपादानसे ईश्वरने बुद्धिमान होनेसे सांचा बना किया जैसे कारीगर अपनी बुद्धिसे एकडीमें स्विडकी वगैर निकाल लेता है अथवा लोहार आदि महीका सांचा बना छोहा ढाछ छेता है इससे आपका कथन निर्मूछ सिद्ध है।

जैन मित्रमण्डलका हाद्शम प्रश्न पत्र।

मुक्तांबलीको क्या आप न्याय और वैशेषिक दर्शनको नहीं मानने हैं ? मुक्तांबलीको क्या आप अप्रमाण मानते हैं ? जो पटार्थ उसमें कहे गए है ने क्या न्यायदर्शनसे विरुद्ध है।

आप जो कहने है कि सूर्य चढ़ाढि साध्य कोटिमे पढ़े हुए हैं उन्हें ही क्यों दृष्टांन वताने हो सो महाराज, साध्यकोटि विवा-दाध्याभिन है निक सिद्ध, इसीलिये उसमें दोप दिया जाता है। सूर्यादिक्रमें हम कार्यत्व ही असिद्ध उनके प्रथक् २ अवयव पहले मिद्ध कीनिये प्रतिज्ञा मात्रसे कार्यत्व सिद्ध नहीं होता है।

आपने कहा कि कोई पटार्थ विना कर्ताके नहीं होता सां महाराज, सूर्य चंद्रमा ईश्वरेच्छा पर्वत, बास, ओला, समुद्र नर्मदांक गोल पत्थर, बामोंमे अग्नि, पानीका वरसना, ब्लाईका रोगको दूर जरना वे मन बिना कर्ताक ही सिद्र हैं।

नृष्टिकी आदिमें साचा स्वीकार किया था उसका उपकरण कौन था 'कुम्भकारमं ईंग्यरकी कर्नृताका कौनसा अश लाते हो सो कुछ नहीं कहा उपलिये विरुद्ध हेत्वाभास नदबस्य है। ई बर्रन साचे-को बनाकर नृष्टि बनाई सो साक्षात् ही क्यों नहीं बनाली ' क्या मनुष्योंक साचेकी तरह जानवर वगैरह तथार किये थे ' साचेमें दालनेक पहले जीवातमा कहां किस र रूपमें घूम रहे थे ' उत्तर दीजिये। साध्य विकल दृष्टात अमिद्ध विरुद्ध हेत्वाभासका कारण पहिन्छ कीजिए तब दृष्टा प्रकृत उठाना आपको योग्य है।

आर्य कुमारसभाका ढाद्यम उत्तर पत्र।

कडंवार उत्तर दिया गया फिर सुनिए। दृष्टांतके जिस धर्मकी न्याप्ति हो वही माना जाता है। कार्यत्वके सिरपर कर्तृजन्यत्वकी

व्याप्ति है। अगर आप सब हो धर्म मार्नेगे तो मै आपसे पृछता हूं क्या वन्हिधूमकी व्वाप्ति सन अंशोंमें हो सकती है ? इस सामन्यतोहर अनुमानसे बुद्धिमत्कर्त्ताकी सिद्धिमे कोई दोष नहीं जैसे दर्शन तथा स्पर्शन द्वारा एक शरीरमें आत्माकी सिद्धिसे इन्द्रियोंका नानापन भी माथ ही सिद्ध हो जाता है वैसे ही उक्त अनुमानसे सर्वज कर्ता ईंक्वर सिद्ध है। कईवार हैत्वाभासोंका परिहार कर हेनेपर भी आप बार २ वही रखते हैं। अच्छा सुनिए कार्यत्वहेतु विरुद्ध इमलिए नहीं कि वह अपने साध्यकी व्याप्तिवाला है और जो आप कुळाळादिके समान ईश्वरको शरीरवाला तथा अल्पज्ञ कथन करते हैं वैसे ईश्वर भी हो सो ठीक नहीं क्योंकि उसमे प्रागभावाप्रतियोगित्व उपाधि दी गई जिसका आपसे खण्डन नहीं हुआ अर्थान् व्याप्तिमा अवच्छेदक धर्म शरीर विशेषण नहीं व्यर्थ है, यह हेतु न्यभिचारी भी नहीं क्योंकि साध्यक अभावताले अधिकरणमें नहीं पाया जाता।

पं० जी शोक है कि न्यायाचार्य होनेपर भी अप मुक्ता-वलीको न्याय द्रीन कहते हैं। न्यायद्रीन बनानेवाला गोत्तम और मुक्ता० का बनानेवाला विक्वनाथ है। जितने आपने सूर्यादि दृष्टांत विना चतनके कहे वह सब साध्य हैं। वाह पं० जी, ईश्वरकी इच्छा-को यैने कब जन्य माना १ आप तो मेरी पूर्वापर बातको मूल जानेसे अप्रतिभा नाम निम्रह स्थानमें हैं, वांसकी अग्नि कोयला पर्वत आदि सब साध्य है। धन्य हो साध्यको भी दृष्टान्त कहते हो।

> जैन मित्रमण्डलका तृयोद्शम प्रश्न पत्र । दर्शनका अर्थ है सिद्धान्त सो महाराज, क्या मुक्तावली

न्यायसिद्धान्तसे वाहर है अणवा न्याय सिद्धान्तवादियोंको अप्र-मांग है १ गोतमका बनाया हुआ सूत्र ही क्या केवल न्यायसिद्धान्त प्रन्थ है १

ईश्वरेच्छा यदि जन्य नहीं है तो क्या सदा एकसी रहती है ' यदि एकमी हे तो सदा एकसेही कार्य्य होंगे फिर संसारके भिन्न २ कार्योका कर्ता इंड्यर कैसे हो सकता है ' ईश्वरेच्छा मृष्टिको बनानेकी है या बिगाडनेकी। पहले मृष्टिको बनानेकी इच्छा होती है फिर महारकी तो क्या वह जन्य नहीं हुई ' जब जन्य हुई तो कार्य्यत्व हेतु उसमें भी रहा इम लिये उसका भी कर्ता होना आवश्यक है।

आयनं अभी कहा था कि ईंग्वरने मोचा मो क्या सोचना नमीन कार्य नहीं है 'यदि है तो अवध्य ही उसका दूसरा ईंग्वर कर्त्ता होना चाहिये।

यदि र्टश्चरके सोचने मात्रसे साचा वन गया तो एक-दम मोचने ही मर्व कार्य अनाद्यनन्त क्यों नहीं वन गये क्योंकि वह ममर्थ कारण है।

यि पर्वत बेंगरह माध्य है तो महाराज साध्यको सिद्ध किन प्रमाणसे करते हो ' जो कुम्भकारका दृष्टान्त देते हो वह भी तो माध्य कोटिमें आ गया। माध्य कोटिमे आनेसे झ्याप्तिका ग्रहण ही नहीं हो सकता है।

विना व्याप्तिके अनुमान ही नहीं वन सक्ता, विना अनुमानके इंट्यर कर्ना केसे सिद्ध होगा ?

दुनिया भरको साज्य कोटिम लानेसे कोई पटार्थ सिद्ध नहीं

हो सक्ता है क्योंकि हेतु दृष्टान्त और पक्ष तो अवश्य प्रसिद्ध होना चाहिये साध्य उनसे पृथक होता है। क्या कभी कोई विचार करने मात्रसे सांचा आदि कार्य हो सकता है ² यदि विचार मात्रसे कार्य्य सिद्ध हो जाय तो आकाश पृष्प गर्दभके सींग आदि भी सिद्ध हो जाना चाहिये। मुझे आपकी इस कथनशैलीपर जोकि नि.सार और युक्तिशून्य है हास्य होता है। महाराज विषयान्तरमें न जाकर भागासिद्ध और असिद्धादोषका पहले वारण कीजिये, सूर्य चन्द्रादिके अवयव तो सिद्ध कीजिये।

आर्थ कुमारसभाका तृयोद्शम उत्तरपत्र।

कार्यत्व हेतुका कोई प्रतिपज्ञ न होनेसे यहां सत्प्रतिपक्ष हेत्वाभास भी नहीं, प्रत्यक्षकी योग्यतावालेमें ही प्रत्यक्ष वाधा होती, ईश्वर प्रत्यक्ष योग्य नहीं इस न्यायकी शैलीको न जानकर आपकी केवल कल्पना है सचाई नहीं, सार यह है कि आप सा-ध्य दृष्टान्तके सब धमेंकि मिलानेसे उत्कर्ष समा जातिका प्रयोग करते इसलिये आप निगृहीत हो गये पराजित हो गये इस रीतिसे स्वरूपासिद्ध, भागासिद्ध, विरुद्ध तथा सत्प्रतिपक्ष और अनैकांतिक आदि सब हेत्वाभासोंका खण्डन हो गया और प्रागभावाप्रतियो-गित्व रूप कार्यत्व ज्योंकात्यों निदेषि बना रहा जिससे ईश्वरकी सिद्धि स्पष्ट हो गई। अमूर्त्तिक सर्व व्यापी आपके माने अनन्त प्रदेशी आकाराके दृष्टान्तसे व्यतिरेकके बिना भी जगत् तथा ईश्वर कार्य

१ विना किसी प्रमाण युक्तिके केवल आपके कथन मात्रसे ही क्या सब हेत्वाभास कट गये ! कहनेकी शैली अन्ही है

जै. मि. म.

कारण माव सिद्ध वर दिया जिसका उत्तर आपसे कोई नहीं बना।

सूर्यनन्द्रादय. सावयवा जटोपादानकत्त्रात् घटनत्, इस अतुमानमें मूर्य चन्द्र अवयववाले सिद्ध होनेसे कार्य हुए। कार्य होनेसे
कर्नृजन्यत्वकी सिद्ध उक्त रीतिसे स्पष्ट है फिर आपका असिद्धहेत्वा
मान कट गया जो आप बार र इंट्वरेच्छाक विषयमें दोप देते जिस
का समाधान अनेक ह्टान्तों में कर चुका पर आप भूल जाते हैं।
फिर्मी मुनिये जिसे मेरे राज्यमें अमन रहे, यह एक इच्छा शहनगाहकी है उनमें कोई केंद्र होता, कोई नौकरींकी तरकी करता और
कोई भिन व्यवस्थामें है। उच्छा एक होनेपर सब अनेक काम होते
ऐसे ईव्वरकी एक इच्छासे सब कार्यकी सिद्धि होनेम कोई दोप नहीं।

क्षेनमित्रमण्डलका चतुर्दशम प्रश्न पन ।

मूर्यादिकमं जब हम कार्य्यत्व ही नहीं स्वीकार करते हैं फिर जहोपादान कारणक कहना हि द्यर्थ है, जन मनुष्य ही नहीं है तब हममें बाव्यणादि भेट करना द्यर्थ हैं। आपका दिया हुआ हेतु ही अमिड़ हैं। यह ऐसा ही है जैसा कि अन्धेके लिये अन्धेकी योजना करना।

हमने कहाथा कि कुन्भकारादि भी साध्यान्त पाती है फिर कार्यकी व्याप्ति किम दृष्टान्तमें होती है सो इस विषयमें आपने कुछ भी उत्तर नहीं दिया और दृसरी ही बात शुरू कुरदी, पहिले दुसका उत्तर दीजिये।

गाहन्शाहकी इच्छाका दृष्टान्त हमारे ही अनुकूल है। बाद-शाहकी प्रति समय भिन्न २ ही इच्छा होती है किसीको दृष्ट देनेकी किसीक उपकार करनेकी। ईश्वर जब सर्वज्ञ है तो उसने सिंह हिरण व्याधा मच्छली आदि विरोधी वस्तुएँ क्यों बनाई तथा वेश्यादि अनर्थकारी पदार्थ क्यों बनाये और वह जब सर्वशक्तिमान् है तो क्यों नहीं मुझे अपना खण्डन करनेसे रोकता है।

- आप जो चेतन कर्ता मानते हो तो क्या चेतन सामान्य हेते हो या विशेष ' यादि सामान्य हेते हो तो सभी कर्ता सिद्ध हो जाता हैं जैसे कि कुलालादिको आप मानते हो। यदि विशेष कर्ता हेते हो तो आपका हेतु न्यभिचारी है और दृष्टान्त साध्य विकल है। और वतलाइये सृष्टि करना स्वभाव है उसका या प्रल्य करना स्वभाव है।

आर्य क्रमार सभाका चतुर्दशम उत्तरपत्र।

सर्वशक्तिमान् परमेश्वरके ईक्षण प्रकृत्यादिद्वारां सृष्टि उत्पन्न होती। एक इच्छासे नाना कार्योकी उत्पक्ति विज्ञुलीकी लहर आदि-से सिद्ध कर चुका हूं और प्रमेय॰ लेखानुसार आप उल्टा कथन करनेसे अपिसद्धांतके मागी, वन गये हो, व्यापक चेतन होनेसे अपनी शक्तिद्वारा समर्थ निमित्त कारण है अपमर्थ नहीं। आपके सव आक्षेपोंका समाधान कर दिया और आप कहते हैं कि घट आदि हष्टांतसे साध्यांशमें क्या समता है उसका उत्तर यह है कि बु द्धि-पूर्वक उत्पादक होना ही हैं अर्थात् कुम्भकार भी अपने इल्पसे मृटी या कपालोंकी दूनरी शक्तमें लाता वसे ईश्वर भी प्रकृतिको एक विशेष आकृतिमे लाता है और जो-आंखोंसे देखा जाता है वहीं हो सकता है यह कहना आपका सर्वथा भूल है न आपने अपने पिताके जन्मको नहीं देखा पर पिताको मानते हैं, ईश्वरकी एक शक्ति एक इच्छासे ही नाना फल होते हैं, ध्यान टीजिये साइंससे सावित है कि सूर्य चंद्रादि पदार्थ घट रहे हैं सां॰ वेत्ता-ओने सावित किया कि सूर्य्यमें एक काला दाग आ गया है। चंतनत्वसामान्यकी न्याप्ति होनेपर भी उसकी विशेपता पदार्थोंकी भिन्न शक्ल सावित करती है इसलिये कार्यत्व हेतुमें विशेष विरोध दोप भी न रहा, आपका ईश्वर वीतराग रहो क्योंकि वह पहिले रागी होनेसे वंधनमें था परंतु हमारा ईश्वर ऐसा नही सर्वथा शुद्ध है, सिहादि विरोधी वस्तुओ सृष्टिप्रवाह अनादि होनेसे कर्मानुसार है और वादलकी न्याई एक ही ईश्वरकी प्रवृत्तिसे स्वभावानुसार सब वस्तुएँ वन गई।

जैनिमित्रमंडलका पञ्चद्राम प्रश्न पत्र ।

हमने यह नहीं कहा कि हमने जो अपनी आंखोंसे देखा वहीं प्रमाण है किन्तु जो किसी न किसी व्यक्तिने जिसे देखा हो-वहीं अनुमान प्रमाणमें आसक्ता है। विना इसके अनुमान ही नहीं वनता है। आपने हमारे अभिप्रायको नहीं समझकर ही व्यर्थका प्रहाप किया है। पिताको प्रज्ञने यद्यपि नहीं देखा हो तो दूसरोंने अवस्य देखा होगा। ईश्वरको जगत् बनाते किस ने देख है ? दृष्टान्त ही नहीं बनता।

अपका कथन है कि विना चेतनाके शक्छ ही नहीं आती सो महाराज, परमाणुकी शकछ है या नहीं, यदि नहीं है तो द्विणुकादि कायेमिं शकछ कभी नहीं आ सक्ती है । यदि शक्छ है तो फिर ईक्वर उनका भी बनानेवाछा होना चाहिये, यदि नहीं है तो भागासिद्ध दोष और स्ववचन वाधित दोष आता है,

ईस्वरकी भी कोई शकल है या नहीं ? यदि है तो उसकाभी कोई कर्ती होना चाहिये। यदि नहीं हैं तो शकलका लक्षण की निये ? विना लक्षण किये दोषोद्घाटन तदबस्य है।

हम पहले भी पृष्ठ चुके हैं कि आपका सामान्य बुद्धिमान् साध्य है या विशेष ? यदि सामान्य है तो सभी जीव कर्ता टहरते है फिर आपका ईश्वर कर्ता नहीं सिद्ध होता। यदि विशेष मानंत हो तो कुँभारमें सान्यांश नहीं जाता इसल्यि साध्य-विकल द्रष्टांत तद्वस्य है। आप इस विषयमें गोलमाल ही करते हैं स्पष्ट कीजिए।

साइन्सको ही यदि प्रमाण मानते हैं तो साइन्स ईश्वरको कर्ता मानकर उसके परतन्त्र नहीं बनती। वह तो विजली आदि पदार्थोंमें जिनके कि द्वारा अनेक कार्य हो रहे हैं अनन्त राक्ति मानती है। जोकि आपके विरुद्ध साध्य सिद्ध करती है।

ईश्वरका सृष्टि बनाना स्वभाव है या प्रत्य करना इमका कोई उत्तर नहीं।

कॅभकारको साध्यान्तःपाती होनेसे दृष्टांताभावमे न्याप्ति नहीं वनती इसका कोई उत्तर नहीं।

ईश्वर सिद्धि भी एक कार्य है उसको ईश्वरने किया या नहीं यदि किया है तो सूर्य चन्द्रादिकी तरह ईश्वरका कर्तृत्व कार्य नहीं किया है तो आप उसे कर्ता क्यों स्वीकार करते हैं अन्यथा गगन-कुसुमको भी मानिये।

प्रलयमें जीव कर्म सहित है या रहित ? यदि सहित है और ईश्वर मौजूद है फिर सृष्टि रूप कार्य उसकी इच्छासे क्यों नहीं होता यदि कर्मरहित है ² तो मुक्तात्मातुल्य है तो किसके लिये मृष्टि रचता है ²

आर्य कुमारसभाका पचद्शम उत्तरपत्र।

जो आपने शाहनशाहकी इच्छाको घटने वहनेवाला कहा सो रहो पर उसकी एक इच्छासे अनेक कार्योंकी सिद्धि अंगमे दृष्टान्त दिया गया है। सन अशमें समानता मानोगे तो अनुमानकी कथा ही जाती रहेगी और ध्यान अरहे यदि ईक्तरको कर्ता न माना नाय तो जड कमेंकि फलकी व्यवस्था भी न रहेगी क्योंकि कर्म भी जड होनेसे फल देनेके लिये चेतन सापेक्ष सिद्ध होते है जैसा कि राजादिका सेवा कर्म गजादि द्वारा फलको उत्पन्न करता हैं। पं० जी आप जगह २ भून करते हैं। पहले आ। बतला आये हैं कि सूर्यादि कार्य है, आज आप उनको कार्य कथन नहीं, आपकी युक्ति पूर्वापर विरुद्ध है, और सामान्यतोदृष्टानुमानसे ईश्वरकी सिद्धिमें धर्मी ईश्वरके प्रत्यक्ष आवश्यकता भी कोई नहीं अर्थीत् जैसे पर शरीर भी चेष्टासे आत्माका अनुमान होता है वैसे सूर्याटि जडपटार्थिक किया विशेषसे ईश्वरका भी अनुमान जानिये और जैसे पुत्रने पिताको नही देखा दूसरेने देखा है पर उसका अनुमान हम दूसरोंको पिताकी पैटाइश प्रत्यक्ष करके कराते हैं इसी प्रकार हमने परमात्माका प्रत्यक्ष नही किया पर घटपटाटि पटार्थ विना किसी कत्तीके न देखकर पृथिन्यादि-का कर्त्ता ईस्वर मानते है । परमाणुकी शकलसे आपका अभिप्राय

[·] १ सर्यादिकको कार्य कहा वतलाया गया है ?

पैदाशुदाका हो तो मैं नहीं मानता। आप ईर्वरकी शकले पूछते है सो भी शकल आकृतिजन्यपदार्थकी होती है ई्खरजन्य नहीं। जो आपने प्रश्न किये उनके सब उत्तर लिख चुके हैं। आप पिण्ट-पेपण करते हैं। मैं आपसे पूछता हूं जीवात्माकी क्या शकल हैं अर्थात् जैसे जीव चेतन कोई-मैटीरियल शकल नहीं रखता वैसे ईखरजन्य न होनेसे कोई शकल नहीं रखता।

जैनमित्रमण्डलका षोडशम प्रश्नपत्र।

हमने कार्यत्व हें तुमें चार हेत्वामास दिये थे उनका एक भी उत्तर निह दिया गया, देशन्यतिरेक, काल्व्यतिरेकका अभाव इेश्वर कर्त्ताके साथ कार्य्यकालाभावका विवातक कहाथा उसका भी आपने कुछ भी वारण नही किया, नाना ईच्छा और एक इच्छा तथा नित्यानित्य इच्छाका भी कोई उत्तर नही दिया गया, कुम्भ-कार दृष्टान्तको साध्यान्त पाती होनेसे ज्माप्तिका अभाव वतलाया गया है उसका भी कुछ उत्तर नही दिया गया।

मेघ विद्युत् नर्मदाके पत्थर आदि पदार्थोंको विना ईन्वरके वनते देखते हैं फिर-उसमें ईक्वर कर्त्ता किस प्रमाणसे सिद्ध होता है उसका भी कोई उत्तर नहीं दिया गया, ईक्वरका सृष्टि वनाना स्वभाव है या प्रस्य करना इसका भी उत्तर नहीं दिया गया।

े सांचा ईरवरने किस उपकरणसे बनाया और क्या चींटी मच्छर सबके भिन्न २ सांचे बनाये ये या केवल मनुष्योंके, इसका कोई उत्तर नहीं दिया गया।

प्रलय कालमें जीव सकर्मी था और ईश्वर भी है तो सृष्टि वयों न बनाई ? यदि निष्कर्मी थे तो मुक्तात्मा तुल्य हुए, फिर मृष्टि किमके लिये और क्यो रची, इसका भी कुछ उत्तरे नहीं दिया गया।

ईश्वर शक्तिमान् और सर्वज्ञ है तो कूएमे गिरते हुए प्रेत्रको जिसे पिता रोकता है ईश्वरने क्यों अनर्थकारी पटार्थिको बना डाला इत्यादि । ईश्वरकी इच्छा नहीं घटती तो आपने फिर इप्टान्त उसे क्यों बनाया ' खेट है हप्टान्त देते समय आप स्ववचन-वाधित टोपसे टोपी बन जाते हैं ।

े साईस जड पटार्थोंमें अनन्त शक्ति स्वीकार करती है जैसा कि हम देखते भी है।

शक्छका लक्षण वया सूक्ष्म अवस्था है ² यिट सूक्ष्म अवस्था ही शक्त हो जैसे कि परमाणुमे तो स्कन्धमे भी वही शक्त होनी चाहिये परन्तु स्कष्म स्थूल है । यदि परमाणुकी शक्त नही है तो दूयणुकाटि कार्स्योमें शक्त नहीं आसक्ती, सारा सिद्धान्त ही आपका विद्यात होता है । जीवात्माकी शक्त हम अपने २ शरीरके वरावर मानते ही है अन्यथा सारे शरीरमे वयो पीडा होती है ²

यदि ईन्वर ही वर्मफल देता है तो एक पशुका वध जव कोई करता है तो वह दोपी और धर्मात्माओं द्वारा नीच क्यों वनाया जाता है क्योंकि पशुका तो ईस्वरने कर्मोंका फल दिलाया है ईश्वर ही दोपी टहरना चाहिये उसीने उस वाधकसे वध धराया है।

सूर्यादिकी क्रियासे ईश्वर कर्तृता यदि मानी जाय तो व्यधिकरण हेत्वाभास है जैसे किसीने कहा ,िक हवेली काली है क्योंकि ध्वना उड रही है।

आर्य कुमारसभाका पोडशम उत्तर पत्र।

प्रलयमें जीव कर्म सिंहत होने पर भी सुपुप्ति अवस्थाकी न्याई किसी विशेष कार्य्यकर नहीं होते सो इंग्वरका नियम है इसिंख्ये आप यह विषयांतर सञ्चार सामान्य बुद्धिमान आदिका विकल्प ठीक नहीं क्योंकि बुद्धिमत्कर्तृत्वकी व्याप्ति कार्यत्वके मिर पर है और यही अनुमान उसकी विशेषता पड़ार्थोंके आकृतिभेडसे सिद्ध करती है।

कर्म जड़ होनेसे स्वयं फल देनेमें असमर्थ हैं। राजसेवाकी न्याई इस लिये अवस्य वह सर्वज्ञ चेतनसापेक्ष है।

जीवात्माका इंश्वरत्वस्वभाव है तो वंबा हुआ क्यों है ? जो कर्मोवाला है वह तो अनीश्वर है फिर इंश्वर केमे होगा ?

सन हेन्त्राभामोंका खैणडन करिया पटने वाले देखलेंगे. ईश्वर रागी होनेसे पहिले ब्रह्म होगा फिर ईश्वर केस रहेगा. आप-का यह यथन सर्वथा निभूल सिद्ध होता है।

नक्क न इस्कार्थ सक्त सिद्धि।

(ता० २८-३९-३०)

(विशेष-प्रिय सन्जनो ! सर्वज्ञ निद्धिके विषयमे जो प्रश्न पत्र आर्य समाजकी तरफसे किये गये हैं उनका अवलोकत आप करेंगे ही । ये प्रश्न पत्र प्राय सब ही बरसे लिखकर लाये गये हैं इसीसे इनके (प्रत्येक प्रश्नके) आदि और अन्तके वाक्य असन्बद्ध और अपूर्ण हैं।

१ खण्डन कर दिया, यह शब्द मात्र ही समानी पिण्डतनीने रट लिया है ! युक्तिका कुछ काम नहि !

आर्य कुमार सभाका प्रथम प्रश्नपत्र । पिय पाटको ! तथा मान्य सभावते !

' जैनोंके तीर्थकर सर्वज्ञ है वा नहीं ' इसमे विधिकोटि जैनोंकी तथा निपेषकोटि हम वैदिकोकी है, सो प्रमाणसे वस्तुका निर्णय होता है । जैनोंका पक्ष है कि ' तीर्थकर सर्वज्ञ शरीरघारी होते हैं ' सो यह प्रनिज्ञा मात्र है, इसमें कोई प्रमाण नहीं, प्रत्यक्ष इसिल्यं नहीं कि वह किमीको नहीं टीखते, अर्थात् शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध यह कमसे श्रोत्रादि बाह्य टिन्ट्रयोके विषय यदि जैन तीर्थकर शब्दांटि रूप होता, हम आप सक्की वाह्य इन्द्रियका विषय होता, और मन रूप अंतरिन्ट्रियके विषय सुखदु खादि होते है सो तीर्थकर प्रत्येक आत्मवृत्ति सुग्व दु खादि रूप न होनेसे किसीके मनका विषय नहीं, क्यों कि स्वात्मवृत्ति धर्मोंका ही स्वमनसे प्रत्यक्ष होता है । अभिप्राय यह है कि यदि बाह्य अन्तरिन्ट्रियों द्वारा सब लोग शब्दांटिकी न्याई जैन तीर्थकरोंको विषय कर रुतं तो इसमे विवाद ही न होता ।

यदि कोई जन कहे कि हमारे पूर्वजोने तीर्थकरों को प्रत्यक्ष-से देखा है अत वह प्रमाण सिद्ध है या इसिल्ये ठीक नहीं कि आपके पूर्वजोंका देखना सबके लिये कैसे प्रमाण हो सक्ता है वैसे। तो में भी कह सक्ता हू कि मेरे पूर्वजोंन सर्वज्ञ तीर्थकरोंको नहीं देखा इसिल्ये अप्रमाण है। दूसरी बात यह है कि सर्वज्ञको तीर्थकर जाननेवाल आपके पूर्वज सर्वज्ञ ये या असर्वज्ञ १ प्रथम पक्ष इसिल्ये अयुक्त है कि मेरे आपके मध्य अनतक सर्वज्ञ तीर्थकर सिद्ध नहीं हुए, उसीमें तो विचार कर रहे हैं, फिर विचार्य साध्य विषय स्वसिद्धि-मे स्वयं कैसे प्रमाण हो सक्ता है १ यदि कहो कि सर्वज्ञ तीर्थकरोंके देखनेवाले हमारे पूर्वज असर्वज्ञ ये सो उन असर्वज्ञ अनार्सोका वचन केसे प्रमाण कर लिया जाय? मन्भव है कि असर्वज्ञ होनेसे मृगतृष्णाकी न्याई आपके पूर्वजोंको मिथ्या बुद्धि उत्पन्न हुई हो. "स्वयमसिद्धः कथं परान् साध्यति" यह न्याय आपपर घटेगा, इस प्रकार जैन तीर्थकरोंकी सर्वज्ञना बाह्य लोकिक प्रत्यक्षसे असिद्ध है। यदि आप क्हें कि योगज्ञ धर्मसे तीर्थकरोंकी मर्वज्ञता सिद्ध है तो वह पक्ष भी योगज्ञ धर्मबाल योगी सर्वज्ञ है वा असर्वज्ञ हैं ? इत्यादि विकल्पोंसे पूर्ववन् दूषिन जानना चाहिये। अभिप्राय यह है कि किसके योगसे योगिको योगज्ञ धर्मकी प्राप्ति हुई।

जितसे उमने मर्वज्ञ तीर्थकरोंको जाना इंचरके योगसे या अनीइवरके योगसे ? अवतक आप अपने ईव्हरकी सिद्धिमें ही तो प्रवृत्त हो रहे हैं, असिद्ध इंवरका योग कैसे माना जाय, अनीइवरके योगसे योगीको योगज धर्म होता है। यह किसीका भी मन्तज्य नहीं, इसमें भी नाना विकल्प हो सक्ते हैं। ग्रन्थ गौरव भयसे दिङ्मात्र जतलाया गया, इस रीतिसे कोई प्रत्यक्ष भी जैन तीर्थकरोंकी सर्वज्ञताका साधक नहीं। जनप्रत्यक्ष ही नहीं तो उसका अनुमान कैसे? क्योंकि लिक्न लिक्नोंके साहचर्य ज्ञानसे उत्तर अनुमान हो सक्ता है।

जो नैन तीर्थकरोंकी सर्वजताम उक्त रीतिते कोई लिक्ष प्रत्यक्ष नहीं जो तीर्थकरोंकी सर्वजताका साथक हो सके। यदि आप अपने आग्रह वश होकर कहें कि उपमानसे तीर्थकर सर्वजकी मिद्धि हो सक्ती है, इसका उत्तर यह है कि 'यथा गोम्नथा गवयः' यहां पर जैसे गो गत साहस्य जानसे गवयमें उपमिति होती है वसे ''यथा अमुक्त सर्वक्षः तथा नैन तीर्थकरा. हर्वजाः' इस प्रकार सर्वजका साहश्य ज्ञान कोई नहीं पाया जाता क्योंकि दूसरोंके सर्वज्ञको आप मानते नहीं और अपने सर्वज्ञ अनी सिद्ध नहीं कर चुके, अतएव शब्द प्रमाणसे भी नीर्थकर मर्वज्ञ सिद्ध नहीं क्योंकि शब्द सिद्ध हो जाय नो मर्वज्ञकी मिद्धि हो और आपका सर्वज्ञ सिद्ध होने तो शब्द प्रमाण जन सके और आपके नीर्थकर दूसरोंके माने हुए शब्द प्रमाणके विषय भी नहीं हो सक्त और नाहीं आपका यह मन्तव्य है, इस प्रकार किसी प्रमाणका विषय न होनेसे जैनोंके नीर्थकरोंकी सर्वज्ञना सर्वथा निर्मूल ज्ञाननी चाहिये।

और जो जैन लोग अपने नीयेकरोकी सर्वज्ञता सिद्ध करनेके लिये यो अनुमानका प्रयोग करने है कि कि कि कि कि कि कि प्रतिवन्ध्रप्रत्ययत्वात् सालान्कारी नहहणस्वभावत्व मिन प्रक्षीण प्रतिवन्ध्रप्रत्ययत्वात् अपगतितिमिर रूप मालान्कारी लोचनिवज्ञानवत् ' जिस प्रकार प्रतिवन्ध्रसे रहित हुआ रूपका मालान् करनेवाला चालुप ज्ञान होता है वैमे ही प्रकाश स्वभाव होनेसे कर्ममल प्रतिवन्ध्रके दूर होने पर कोई आत्मा सब पटायों के ज्ञानवाला है, क्यों कि जो जिसके प्रकाश स्वभाववाला होना है वह प्रतिवन्ध्र रहित होने पर उसका सालान्कार करनेवाला होता है यह व्यक्ति है।

दसमें प्रष्टिय यह यह है कि पत्तभूत आत्मासे आत्मसामा-न्यका ग्रहण है या किसी विशेष आत्माका र प्रथम पक्ष मानो तो आत्मत्व सामान्यके अन्तर्गत हम आप सब ही सर्वज्ञ हो जाने चाहिये पर हममेंसे कोई भी सर्वज्ञ नहीं। यदि कहो कि किसी विशेष आत्माको पक्ष मानते हैं तो उत्तर दें कि वह विशेषता केसी र आत्म सामान्यसे सब आत्माका ग्रहण होने पर भी मर्वज्ञत्व तथा अल्प्ज्ञत्व धर्म ही उनके परस्पर विशेष—

जैन मित्रमण्डलका प्रथम उत्तरपत्र ।

आपने कहा है कि तीर्थंकर सर्वज्ञका प्रत्यक्ष नहीं होता सो खह कथन ठीक नहीं, क्योंकि तीर्थंकर सर्वज्ञका इस समय यद्यपि प्रत्यक्ष नहीं होता हो परन्तु पूर्वनोंको अवस्य प्रत्यक्ष था, जैसे कि खत गोखले आदि प्रत्योका आज प्रत्यक्ष नहीं है तथापि पहिले अवस्य था। दूसरे तीर्थंकर सर्वज्ञका प्रत्यक्ष नहीं होता है यह आप कौनसे प्रत्यक्षसे कहते हैं, इन्द्रिय प्रत्यक्षसे या अतीन्द्रिय प्रत्यक्षसे? यदि इन्द्रिय प्रत्यक्षसे कहते हैं तो आपका इन्द्रिय ज्ञान 'सिक्चिष्ट पर्योंमें ही होता है फिर सर्व देशकालमें सर्वज्ञ निषेषक आपका इन्द्रिय प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है ? यदि होसकता है तो जिस प्रत्यक्ष्म से आप सर्वज्ञका अभाव सर्व देशकालमें देख रहे हैं इसलिये आप ही सर्व दृष्टा सर्वज्ञकी सिद्धि स्वीकार करते हैं। यदि अतीन्द्रिय प्रत्यक्षमें कहते हैं तो असिद्ध ही है। इमलिये प्रत्यक्षमें आप सर्वज्ञका निषेष कर ही नहीं सक्ते।

सर्वज्ञ अनुमान प्रमाणसे सिद्ध होता है "कश्चित् आत्मा सकल पढ़ार्य साक्षान्कारी तद्रहण स्वभात्ववे सित प्रक्षीणप्रतीवन्ध प्रत्यय-त्वात् यो यो यद्रहण स्वभावत्वे सित प्रक्षीण प्रतिवन्ध प्रत्ययवात् स.सकल पढ़ार्थ साक्षात्कारी यथा अपगत तिमिरलोचन रूप साक्षात् कारी। जिस प्रकार अपगतिनिरलोचन रूपका प्रकाश करता है उसी प्रकार कोई आत्मा भी सकल पढ़ार्यका जाननेवाला है।

तीर्थकर मुख स्वरूप ज्ञान स्वरूप हैं, आवरण और दोषोंकी सर्वथा हानि होनेसे व पूर्ण ज्ञान प्रकटकर छेते हैं। जिस प्रकार कमसे हम छोगोंमें भी ज्ञान बढ़ता जाता है और बढ़ते २ किसी आत्मामें पूर्ण ज्ञानका प्रकर्ष हो जाता है जैसे कि परिमाणका आकाशमें। इसिलिये तीर्थकरमें सर्वज्ञता अनुमान सिद्ध है और अर्थापित्तसे भी तीर्थकरकी सर्वज्ञता सिद्ध होती है। विना तीर्थकर सर्वज्ञके धर्मादिक अतीन्द्रिय पदार्थोंका उपदेश वन नहीं सक्ता है। इसिलिये प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे तीर्थकर मर्वज्ञ अच्छी तरह सिद्ध होते हैं। उनका निभेधक कोई प्रमाण नहीं हो सकता है।

आर्यकुमार सभाका वितीय प्रश्न पत्र।

हा सक्ते हैं, परन्तु उक्त सर्वज्ञता अवनक विवादास्पद है आप मिट नहीं कर मके । इस रीनिसे प्रथम तो आपके पक्षका ही विवेचन नहीं हो मक्ता, यदि आप दुराग्रहके कारण कहे कि 'कञ्चित' पद ही विशेषण रूप हुआ किसी विशेष आत्माको बोधन कराता है सो भी ठीक नहीं, जिस विशेषको बोधन कराता है वह क्या है 2

यह आप अत्र तक सिद्ध ही नहीं कर सके। सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करने पर इसमें भी अनेक टोप आते हैं। अत्र आपके साध्यकी वात सुनिय, सकल पढ़ार्थ साक्षात्कारित्व रूप साध्य समान रूप से मानते हैं अथवा विद्याप रूपसे मानते हैं प्रथम पक्षमें प्रमेयत्वेन अस्मटाटिकों सब पढ़ार्थोंका मामान्य ज्ञान होनेसे सर्वज्ञताकी आपत्ति होगी।

दूसरे पक्षमे पूर्ववत् दोपोंकी आपत्ति वनी रहेगी जिनका विशेष मेरे बनाए 'स्थाद्वादध्वातमार्तड' नामक संस्कृत अन्थमे है, अस्तु यदि आपके इस अनुमानपर विकल्प लिखता जाऊं तो एक बडा पोथा बन जायगा। अब आपके हेतुपर विचार करता हू— संक्षेपसे। प्रक्षीण प्रतिबन्ध प्रत्ययत्वान् आपके इस हेतुका साध्यांश दृष्टान्तसे वतलाएं क्या है, अर्थात् सब पढार्थोंका साक्षात्कार करना, यह जो आपके साध्यका स्वरूप है, वह रूपके प्रकाशक चाक्षुप ज्ञान-में नही पाया जाता, चाक्षुष ज्ञानसे तो रूप वा अधिकाधिक रूप वाले द्रव्यका प्रकाश होता है उममें भी एक कालमें सबका नहीं, यह सर्व तन्त्रसम्मत बात है परन्तु आप उक्त हेतुसे तीर्थकरोमें यावत् वस्तुके ज्ञानकी सिद्धि करते हैं जो दृष्टान्तभूत चाक्षुपज्ञानमें नहीं पाई जाती।

इसिल्ये तीर्थकरोको सर्वज्ञ मिद्धि करनेकं लिये दिया हुआं उक्त हेतु साध्य विकल होनेसे दूषित=हेत्वाभास है और गेप आनेवाले दोषोंकी सूक्ष्म विवेचनाको छोडकर दिखलाता हूं कि यह अनुसत्प्रति पक्ष भी है। क्योंकि इसके साध्याभावका साथक विरोधी हेतु समबल पाया जाता है जैसा कि ' जैन तीर्थकरा सर्वज्ञा न भवितुमहीनि शरीर धारित्वात् ग्थ्या प्ररूपवत् ' जिस प्रकार गली कूचोंमें फिरनेवाले पुरुष शरीरधारी होनेसे सर्वज्ञ नहीं होते वैसे ही जैनोके तीर्थकर भी सर्वज्ञ नहीं, क्योंकि को २ शरीरधारी होता है वह वह सर्वज्ञ नहीं।

जैसे कि हम आप सभी रारीरधारी होनेसे सर्वज्ञ 'यत्र यत्र रारीरधारित्वं तत्र तत्र सर्वज्ञताभाव ,' यह न्याप्ति रथ्या पुरुषमे उभय वादि सम्मत (१) स्पष्ट सिद्ध है।

इस जैनोंक इंक्वरकी सर्वज्ञताके अभाव साधक अनुमानमें प्रत्यक्ष बाध भी नहीं, क्योंकि अल्पज्ञता सहचारी शरीरधारीपना प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध है, अतएव यह हेतु स्वरूपासिद्ध भी नहीं और इसमें अन्य प्रकार दूसरा भी वाघ नहीं आसक्ता, क्योंकि हमारे शब्द प्रमाणमें तो किसी शरीरधारीको सर्वज्ञ माना नहीं।

जैन मित्रमण्डलका हितीय उत्तरपत्र।

नो निमका सा कि नहीं वह उसका वाधक भी नहीं हो मक्ता है। प्रत्यक्ष प्रमाणसं परमाणु आकाश ईधरकी सिद्धि नहीं होती उमलिये प्रत्यक्ष उनका वाधक भी नहीं हो मक्ता है। इसी प्रकार प्रत्यक्षमें मर्वज्ञका निषध भी नहीं हो मक्ता है। नो स्वयं मर्वज्ञ नहीं है वह मर्वज्ञकों नहीं जान सक्ता है यह कथन मिथ्या है. ज्योंकि नो स्वयं मिद्र नहीं है वह सिद्धकों जानता ही है इंगर नहीं होकर भी ईधरवादी ईधरकं सद्भावकों कहते ही है। तीर्यक्र मर्वज्ञ है इम विषयमं दूमरा अनुमान लीजिये।

मृद्म अन्तरित दूरार्थ किसीके प्रत्यक्ष है अनुमेय होनेसे जो जो अनुमेय होते हैं वे किसी न किसीके प्रत्यक्ष अवस्य होते हैं, जैसे कि अग्नि अग्नि, अनुमेय हैं इमिल्ये वह किसीके प्रत्यक्ष ज्ञान विषयी भूत है, इस अनुमानसे तीर्थकरमें सर्वज्ञता अञ्छी तरह सिद्ध होजानी है। आप इस अनुमानमें वाघा दो, तभी तीर्थकरमें सर्वज्ञताका निषेष कर सक्ते हैं, अन्यथा नहीं।

हमने जो चक्षुका दृष्टान्त दिया है वह इसी अंशमें है कि वह तिमिरादिक हरने पर पदार्थका स्पष्ट ग्रहण करता है, इसी प्रकार दोपावरणके हरने पर तीर्थकर भी सकल पदार्थके ग्राहक है, दृष्टान्न प्रतिबन्धमें है।

हम जो अनुमान दे चुके हैं कि दोप और आवरणकी हानि हम

लोगोंमें कमसे पाई जाती है। प्रक्रुष्यमाण हानि होनेसे। जो जो प्रक्रुष्यमाण हानि होती है वह कहीं पर निरशेषतासे हो जाती है, जिस प्रकार सोनेको अग्निमें देनेसे उसके किष्टिकालिमादि दोष कमसे घटते हुए पूर्णतया दूर हो जाते हैं इसी प्रकार तीर्थंकर सर्वज्ञ दोषावरणकी पूर्णतया हानि होजाती है। इस अनुमानसे कोई आत्मा विशेष सर्वज्ञ सिद्ध होजाता है इस अनुमानमें वाधा दीजिये, अन्यथा सद्धेतु पूर्वक सर्वज्ञ सिद्ध हो ही जाता है। तीर्थंकर सर्वज्ञ एक देशीय हैं। एक देशमें रहकर भी वह समग्र वस्तुओंका ज्ञान करता हैं।

परिच्छिन्नत्व योगियोंमे है, परन्तु वह वहां सर्वज्ञत्वाभाव नहीं है इसिछिये आपका परिच्छिन्न हेतु वाधित भी है । क्योंकि अनुमान वाधित पक्षके वादमे वोछा गया है, यह हेतु सत्प्रतिपक्ष प्रस्त भी है ''तीर्थकरा सर्वज्ञा निर्दोषत्वात्'' जो जो सर्वज्ञ नही होता वह निर्दोष भी नही होता, जैसे कि गछीमें जाता हुआ संसारी आदमी । हमारे सर्वज्ञ सत्तरीर और अद्यारीर दोनो ही प्रकार हैं जीवनमुक्तावस्थामें सद्यारीर हैं और सिद्धावस्थामे अद्यारीर हैं।

शरीर सर्वज्ञताका वाधक नही है-

आर्यकुमार सभाका तृतीय प्रश्नपत्र ।

और आपका आगम सर्वज्ञताकी सिद्धि न होनेसे प्रमाण रूप सिद्ध नही हुआ। यही रीति रोष वॉधोंमें जान छेनी चाहिये और यह अनुमान व्यभिचारी भी नहीं, क्योंकि साध्यके अभाव वालेमें नहीं जाता प्रत्युत सर्वज्ञताके अभावको छोडकर रारीर धारित्व नहीं रहता, इस प्रकार विचार करनेसे मेरे इस तीर्थकरोंके अभाव साधक

अनुमानमें कोई दोप नहीं। यदि यह कहा जाय कि तुम्हारे अनुमान-में 'कर्ममलवत्व' उपाधि है अर्थात् जहां २ कर्म मल सहित शरीरधारी-पना वहा २ सर्वज्ञताका अभाव है । तीर्थकरों में कर्ममल न होनेसे शरीर होनेपर भी सर्वज्ञताका अभाव नहीं, यह कथन भी आपका ठीक नहीं। वर्योकि आपके ऋपभदेव भगवानमें कर्म मल भी पाया नाता है। जब ऋषभदेवजीने खियोको चौंसर कला दिखलाई, नाचना गाना बजाना पुलेला बनाना द्भ लीला सचरणकम्म क्रिया आदि तो भी वह कर्म मल्से कैसे रहित हो सक्ते हैं, अभानुमानमपि-यहां अनुमान भी हो सक्ता है। श्री ऋपभदेव व तीर्थकर कर्ममल सहित काम क्रिया नृत गीतादि शिक्षण करत्वात् तादृश पुरुपवत् जिस प्रकार साधारण नृत्यादि सिखलाने वाले पुरुष कर्ममलसहित हैं वैसे ही श्री ऋपभदेव भगवान जानने चाहिये। जो इस प्रकार कर्ममल सहित तथा गरीरधारी हो कवापि सर्वज्ञ नहीं इस रीति ज्यो २ जैन सिद्धान्तकी परीक्षा करें त्यों २ सिकता कूपकी न्याई विशीण होना दीखता है । आपने जो कथन किया है कि अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष आपके सिद्ध नहीं, उसका उत्तर यह है कि आपने भी कोई अती-न्द्रिय प्रत्यक्षको सिद्ध नहीं केवल प्रतिज्ञा वचनसे ही कह दिया कि अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष भी सर्वज्ञकी विषयताका वाघक नही, और यह आपका जो कथन सर्वज्ञ होने नही सर्वज्ञका निषेध कर सक्ता है नाम मात्र है क्योंकि वस्तुकी सिद्धि, असिद्धि प्रमाणसे हो सक्ती, सो आपने सर्वज्ञकी सिद्धिमें प्रमाण कथन नहीं किया और जो आपने गोखलेके दृष्टान्तसे कहा कि जैसे उसको प्रत्यक्षसे जानने वाले पूर्वज थे यह वैसे ही पूर्वजों तीर्थकरोंकी सर्वज्ञताको जाना है

उसका विचार यह है कि वह आपके पूर्वज कौन हैं ? आप्त या अनात ? आप्त सर्वज्ञ हैं या अल्पज्ञ हैं ? प्रयम पक्ष अवतक सर्वज्ञकी सिद्धि न होनेसे ठीक नहीं । अल्पज्ञ मानो तो उनका वचन भ्रांति रहित सर्वथा कैसे माना जाय ? आप अतीन्द्रिय प्रमाणका लक्षण करके अपने पक्षम सङ्गत बनाकर दिखलाव। आप लिख चुके हैं कि तीर्थकरों में परावीनता भी अब मुख स्वरूप आवरण दोष रहित, पूर्ण ज्ञान भी प्रकट कर लेते इनलिये तीर्थकरमे सर्व शक्ति अनुमान सिद्ध है यह कथन आपका परस्पर विरुद्ध है। जो पराधीन होता वह मुख स्वरूप पूर्ण ज्ञानवाला नहीं होता जेमा कि रथ्या पुरुष, और जो आपने नीर्थकरोंको एक देशी मानकर सर्वज्ञ कथन किया है इसमें कोई ह्यान्त नहीं दिया जो एक देशी होवे और सर्वज्ञ भी होवे उस द्वारा आपके तीर्थकर मर्वज्ञ सिद्ध किये जांय, और जो आपने—

जैन मित्रमण्डलका तृतीय उत्तरपत्र।

तीर्थकरा न सर्वज्ञा शरीरधारित्वात् यह मत्प्रतिपक्ष दोप मिथ्या है, क्योंकि शरीरधारित्व हेतु संदिग्ध विपक्ष व्यावृत्तिक है। म व्याम मित्र तनयत्वात् इतर मित्र पुत्रवत् इसकी तरह।

ज्ञानकी आप नीवोंमें क्रमश वृद्धि मानते हैं या नहीं। यदि मानते हैं तो पठनपाठन करना व्यर्थ है। यदि वृद्धि मानते है तो कहां तक ?

तीर्थकरके जो मुख गुणंक विद्यानक कम है वे दूर हो गये है इसिलये वे मुख स्वरूप हैं। तीर्थकर प्रकृतिकी पराधीनता मुख गुणकी विद्यातक नहीं है। एक कार्यकी पराधीनता दूसरे कार्यमें विद्यातक नहीं होसक्ती है। जो चीज दुनियांमें एक ही होती है उसकी सिद्धिके लिये समानताकी आवश्यकता नहीं है, जैसे आपका वैदिक ईश्वर एक है, उसकी सिद्धिके लिये क्या कोई दूमरा ईश्वर आवश्यक है ?

ऋषभदेवने जो कला सिखलाई थी उसका दृष्टान्त सिद्ध साध्यता दोषमे आपको लेजाता है, क्योंकि उन्होंने गृहस्थावस्थामे ही सिखलाई थी।

जिसकी प्रकृष्यमाण हानि होती है उसकी नि शेष हानि होजाती है जैसं सोनेको अग्निमें देनेसे किष्टिकालिमादि दोष दूर हो जाते हैं इसी प्रकार तीर्थकरके भी पूर्ण आवरण दूर हो जाते हैं। इम अनुमानमें आप क्या वाधा देते हैं विदे है कि हमने दोतीन अनुमान सर्वज्ञ सिद्धिमें दिये, परन्तु आप दूसरा ही विषय ले बैठते है, हमारे दिये हुए अनुमानोंमे कुछ भी दूषण नहीं देते इमलिये सर्वज्ञ सिद्धि अनिवार्य है अन्यथा दूषण टीजिये।

आर्य कुमार सभाका चतुर्थ प्रश्नपत्र।

सोनेके दृप्पान्तसे कहा कि धीरेधीर मलके उतर जानेसे सोना शुद्ध होजाता है वैसे कर्ममल आवरण धीरे धीरे हृटकर शुद्ध होनेसे तीर्थकर बनता है। इसपर में पूछता दूं कि सोनेको शुद्ध बनानेके समान तीर्थकरके सर्वज्ञ बनानेवाला आपके पास कौन साधन है। विहित कर्मादिके अनुष्ठान द्वारा शुद्ध होकर तीर्थकरोंकी सर्वज्ञता रूप बनावट माने तो वह किसके उपदेश है। सर्वज्ञ तो अवतक सिद्ध नहीं हुये जिनका उपदेश प्रमाण मानकर आत्मा सर्वज्ञ वन जावे, अल्पज्ञका उपदेश तो प्रमाण ही नहीं। हम, सिह न होनेपर भी सिंहको जान सक्ते हैं यह दृष्टान्त विषम है। मैं तो पूंछता कि जो आपके सर्वज्ञको जानता वह किस प्रमाणसं जानता है। और जो आप कहते हैं कि अनुमेय होनेसे सूटम दूरवर्त्ती पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं, अग्निवत् इसमें पृष्टव्य है कि अग्न्यादि अनुमेय तो अल्पज्ञके प्रत्यक्ष सूक्ष्मवर्त्ती आप सर्वज्ञके प्रत्यक्ष मानते हैं सो वन ही नहीं सक्ता ? क्योंकि कंस्यचित् पद्से आप किस्को साध्य मानते हैं, सर्वजको कहें तो दृष्टान्त साध्य विकलता बनी रहेगी। अल्पज मानेगे तो अपसिद्धान्त आवगा और जो योगियोंके दृष्टान्तसे तीर्थकरोंको सर्वज्ञ सिद्ध करनेकी चेष्टा की तो मै पृंछता हूं कि योगी सर्वज्ञ कैसे वन गये 2 धन्य हो पडितनी आप साध्यको दृष्टान्न वना हेते हैं। आपके उक्त अनुमानसे प्रत्यक्ष वाधा स्पप्ट है क्योंकि तीर्थकर प्रत्यक्षसे सिद्ध नहीं अतएव साध्य वैकल्प ज्योंका त्यां पड़ा है। आपने मेरे इस हेत्वात्मासका कोई उत्तर नही दिया, जो आपने सूर्यके समान तीर्थकरको एक मानकर समानताकी आवश्य-क्ताका अभाव स्वीकार किया सो न्यायकी देशिसेवाह्य है। समानता न माननेसे आपका कोई दृष्टान्त न वनेगे, फिर अनुमानसे कैसे सिद्ध करोगे ?

जैन भिन्न मण्डलका चतुर्थ उत्तरपत्र ।

आपने कहा कि विशेष आत्माको अनुमानसे सिद्ध करते हो या सामान्य आत्माको । हम विशेष आत्माको सर्वज्ञ मानते हैं। जिस आत्मामें दोष आवरणकी संविधा हानि होजाती है वह आत्मा सर्वज्ञ है। शरीरधारी सर्वज्ञ नहीं होता है इस विषयमें हम पहिले ही ईश्वरका दृष्टान्त दे चुके हैं। महाराज! शरीरधारी जो होता है वह उग्लेडका राजा नहीं हो सकता, जैसे हम सन। नतलाइये कि एक इंग्लेडके राजाको किस प्रमाणसे आप सिद्ध करते हैं 2 !

आपने कहा कि ईश्वर कर्मोंका बनाया हुआ है सो महाराज जरा समझकर ही लिखिये, हमने कर्मोंके अभावसे सर्वज्ञ माना है न कि कर्मोंके सद्भावसे, प्रकृष्यमाण हानि दोषावरणकी हमने वत-लाई थी उसका कोई उत्तर आप नहीं देते हैं। कर्म पौद्गलिक पदार्थ है वह-पुद्गलकी पर्ट्याय है। आत्माके कथायवश वे पुद्गल कर्म रूप, परिणत हो जाते हैं और आत्माको परतंत्र कर देते हैं। कर्मसे कथाय पैटा होती है और कपायसे पुन कर्म पैटा होते हैं। जब कर्मबन्ध करनेवाला कपाय (रागद्वेष) घटने लगता है त्यों २ कर्म भी आत्मासं जुटा होनं लगता है।

जन आत्मामे सर्वथा कषाय नहीं रहती तन आत्माका स्वाभाविक गुण पूर्ण प्रकट हो जाता है। जहा पर गुणोंकी पूर्णता-है वही सर्वज्ञ है। रागद्वेप वश पुद्रल ही कर्मरूप वनजाता है जैसे -िक जठराग्निसे दूधका रस वन जाता है। खेद है आप कर्म शब्दका अर्थ ही नहीं समझते।

शब्दका अथ हा नहा समझत।

जैसे सोना अग्निसे शुद्ध हो जाता है वैसे ही आत्मा
तपश्चरण, दीक्षा, ध्यान आदिसे शुद्ध हो जाता है, वही योगी है।

ज्ञानकी अविध आपने नही बतलाई सो पहिले अविध बतलाइये।
जीवोंको आप अल्प नानते हैं वह अल्पज्ञता स्वामाविक
है या वैभाविक उत्तर दीजिये।

सोनेका दृष्टान्त मलक्षयमें दिया गया है न कि पुनः कर्ममल

आर्य कुमार सभाका पश्चम प्रश्नपत्र।

और जो आपने शरीरधारित्व हेतुको मित्रातनयत्वात् इसके समान शरीरधारित्व हेतुके सन्दिग्ध विपक्ष व्यावृत्तिकं कथन किया सो केवल प्रतारणार्थ है, क्योंकि सब गरीरधारि ' सर्वज्ञ ' नही यह मेरे दिये रथ्या पुरुषके दृष्टान्तसं स्पप्ट है। भला एक भी तो श्रीरघारी प्रत्यक्षसे सर्वज्ञ दिखलार्वे विवेकि ज्ञान क्रमश २ वृद्धि होनेपर परिमित वृद्धि ही होसक्ती है अपरिमित नहीं, क्योंकि वह परिच्छित्र हैं। चाहे कोई प्रोफेसर कितना ही विद्वान होताय अन्तत. उसका विज्ञान अगरिमित कदापि नहीं पाया जाता। ऋषभदेवजीके विषयमें आपने कोई अपने प्रन्थसे प्रमाण नहीं दिया कि उन्होंने गृहस्थ कालमें स्त्रियोंको काम कला आदि सिखलाया, तीर्थकरत्व कालमें नहीं । ऐसा मानने तो भी यह कर्म उनका प्रशान्ति नहीं, पर विना प्रमाण ही आप ऋथन करते जाते हैं। मैं वार २ पूछता हूं कि तपश्चरणसे जो आत्मा सर्वज्ञ वनता है वह तप-श्चरण क़िसने उपदेश किया ² इसका उत्तर दीनिये। पं.जी आप कुछका कुछ वोलते हैं। मैने कर्म किसने वजाया यह नहीं पूंछा किन्तु ऐसे कर्मोंका किसने उपदेश किया पूछा है उसका उत्तर आपसे अवनक नहीं बना, जीवोंके ज्ञानकी अवधिका उत्तर सुनिये। जीवात्मा कहा तक उन्नति करता है जहां तक उसकी मुक्ति हो, जीवोंपर वह सर्वज्ञ -नहीं होता बहुज़ होजाता है।

जैन मित्र मण्डणका पश्चम उत्तर पत्र।

शरीरत्वकी अल्पज्ञताके साथ व्याप्ति नहीं है। आपका शरीरत्व हेतु सन्दिग्ध व्यभिचारी है। इस विपयमें पहिले कहा जाचुका है। और इंग्लेण्डके राजाका दृष्टान्त मी दिया जाचुका है। पिष्टपेषण व्यर्थ है।ज्ञानके विषयमें तो आपने पूरी गोलमालकी है।आप वृद्धि ७ स्वीकार करते हुए बहुज्ञ वतलाते हैं। क्या महाराज बहुज्ञका क्या अर्थ 2 बहुतका जाननेवाला, सो क्या बहुतसे अल्पज्ञ लेना या सर्वज्ञ। -यदि अल्पज्ञ होता है तो पहलेसे वृद्धि वढ रही है वह आगे वृद्धि किस कारणसे रुक जाती है १ यदि नहीं रुकती तो सर्वज्ञ स्वयं सिद्ध है। सर्वज्ञंता स्वभाविक है यह नष्ट नही होती किन्तु कर्मोसे रुकी हुई है, जैसे आवरकसे दीपककी ज्योति। कर्म कषायसे होते हैं यह पहले कहा गया है। अल्पज्ञता जीवका स्वभाव है या विभाव इसका कोई उत्तर नही दिया गया। आखका दृष्टान्त तिमिरापहरण होनेपर रूपके प्रकाशमें है वह घटित ही है। हमने बीनाङ्करका सम्बन्ध कर्म और राग द्वेपके साथ कहा था न कि सर्वज्ञ सन्ततिके साथ। ससार अनादि है इसिछिये सर्वज्ञ परिपाटी भी अनादि है, अन्ध परम्परा सर्वज्ञ न मानने वार्लोमें ही है न कि सर्वज्ञ मानने वालोंमें । ऋषभदेवने गृहस्थ दशामें नृत्यकलाका उपदेश दिया है इस विषयमे आदिपुराणको देखिये। कर्माभाव कषायोंके हटनेसे होता है। मुक्तावस्थामें ज्ञान मानते हैं वा नही 2 यदि मानते हैं तो कितना व यदि नहीं मानते तो मुक्तावस्थाका स्वरूप क्या ?

आर्यकुमार सभाका षष्ठ प्रश्न पत्र।

हमारे मतमें जीवोंकी अल्पज्ञता स्वाभाविक धर्म है इसके विषयमें लिख चुका हूं। आप जिस विशेष आत्माको सर्वज्ञभावता जिसके आवरणकी हानि होजाती है यह प्रतिज्ञा अवतक सिद्ध न होनेसे मान्य नहीं। शरीरधारी सर्वज्ञको प्रलयकाल तक भी आप सर्वज्ञ दृशन्त द्वारा सिद्ध नहीं कर संक कर्माभावसे सर्वज्ञनामें तो प्रश्न किया, किसके उपदेश किये साधनोंसे कर्माभाव होता है, सर्वज-के तो वन नहीं सक्ते क्योंकि उसकी अवतक सिद्धि नहीं हुई। आत्माका स्वाभाविक गुण सर्वजताको छिखते हो तो जैसे स्वामा-विक सर्वज आत्मा कर्म मलसे बद्ध हो गया तो सम्भव है कि तीर्थकर सर्वज पुन वन्वनमें आजावे तो घटच कुटचां प्रभातां (१)की न्याई आपके सर्वज्ञ ईश्वरकी पोलपाल बनी रही और कर्म पुद्रलके विषयमें आपने कथा ही कथा रट दी। हमने पूछा था कि वह साधन किसके उपदेश किये हुए हैं। ऋषभदेवजीने गृहस्थावस्थामें कर्म कहा सि-खलाई इसमे महापुराणका पाठ पढ़के सुना दीनिये ताकि हमारा मन्तोष हो नावे । ज्ञानावणीय कर्म आत्माका स्वाभाविक है वा वैभाविक उत्तर दीनिये । इङ्गलैण्ड एक ससीम जगह है जहां एक समयमें दो राजा नहीं हो सक्ते । अलग २ समयमें अलग २ राजा हुए और आगे होंगे भी। और इस वक्त भी मौजूद है। हम जैसा मनुष्य ही है सर्वज्ञ नहीं इसिल्यें आपका सर्वज्ञतामें इङ्गलैण्डका दृष्टान्त आपकी अनभिज्ञताको प्रकट करती है क्योंकि सर्वज्ञतामें देशकाल-का बन्धन नहीं हो सक्ता।

जैन भित्रमण्डलका पष्ट उत्तरपत्र।

यदि शरीरधारी और ज्ञान विशेषताका विरोध होता तो वञ्चेके ज्ञानमे दूपण आता। वञ्चा शरीरधारी है, पग्नु उसकी वृद्धिमें ज्ञानकी वृद्धि होती जाती है। यदि शरीरधारित्व सर्वज्ञताका वाषक हों तो कहना चाहिये कि वह अल्पज्ञताका साधक है परन्तु ऐसा नहीं है। यदि ऐसा होता तो वच्चेके शरीरकी वृद्धिमे ज्ञानकी न्यू-नना होती परन्तु ऐसा नही होना, किन्तु शरीरकी वृद्धिमें ज्ञानकी वृद्धि होनी है इसल्चिं शरिरधारीत्वके साथ मर्वज्ञताका विरोध नहीं है, यदि अल्पज्ञता स्वाभाविक है तो प्रश्न होता है कि अल्पज्ञता-स्वभाव कहा तक माना जाय, क्योंकि जो स्वभाव होता है वह तद्वस्थ होता है फिर ज्ञानकी वृद्धि आप मुक्तात्मा तक क्यों मानते हें ' अन्पज्ञता स्वामाविक नहीं है क्योंकि ज्ञानकी वृद्धिका प्रकर्प मर्वज्ञ तक होसक्ता है जैसेकि परमाणु परिमाणका प्रकर्ष आकाश तक होता है उमलिये जीवकी अन्पज्ञता स्वभाव नहीं कहा नासक्ता है।

तीर्थकर जन्मावस्थामें सर्वज्ञ नहीं थे किन्तु पीछे कर्ममल हटा कर सर्वज्ञ हुए है। तीर्थकर सर्वज्ञ होनेपर फिर कर्ममलसे बंध नहीं सक्ते हैं क्योंकि कर्ममलको बांधनेवाले जो कपाय भाव थे वे उनके नष्ट हो चुके हैं। कारणके अभावमें कार्य भी नहीं हो सक्ता है। इसीलिये सर्वज्ञ आर्यकी मुक्तिकी तरह मुक्तिसे लौटते नहीं।

परिच्छित्र परिमाण होनेपर भी सर्वज्ञ होसक्ता है इसमें कोई वायक प्रमाण नहीं है। सूर्य छोटा हैं परन्तु वह बहुत अधिक पदा-थोंका प्रकाशक होता है, इसी प्रकार तीर्यकरकी आत्मा परिमाणमें छोटी होनेपर भी त्रिजगत्को प्रकाशित करता है, आत्माको ज्ञाना-चरण कर्म दक छेता है इस विषयमें उपदेशकी क्या आवश्यक्ता थी ² कारणसे कार्य स्वयं होजाता है। सूर्यको घन पछ दक छेता है इस क्षियमें उपदेशकी क्या आवश्यक्ता है ?

'महारायजी! ज्ञानावरण जीवका स्वाभाविक नहीं है किन्तु षौद्गलिक है। हम कह चुके हैं कि कपायादिके हटनेसे आवरण हट जाते हैं और यही हेतु प्रक्षीण प्रतिवन्ध प्रत्ययत्व हमने दिया है, फिर खेद है कि इतनेवार विस्तारसे समझानेपर भी आप ज्ञानावरण-को स्वाभावि क मानते हैं। खेद!

आर्य कुमार सभाका सप्तम प्रश्नपत्र।

?.

नो आपने जीवकी बहुज़ता पर आक्षेप किया, इस प्रकार बहुज़से आपके मतमें भी सर्वज़ता सिद्धि होगी जीवके स्वरूपमें, सो ठीक नही क्योंकि 'निरितश ज्ञानेतरोत्ऋप्ट ज्ञानवत्वमेव बहुज़त्वं मन्यामहे' मैं निरितशय ज्ञानसे भिन्न पूर्वापेक्षया उत्ऋप्ट ज्ञानवाला होना ही जीवका बहुज़ होना मानता हूं इसिलियें मेरे पक्षमे दोप नहीं और आपके पक्षमें साध्य वैकल्पादि दोष तद्वस्त है, और जो आपने शरीरके बढनेसे ज्ञानका बढना कहा है सो तो शरीरके घटनेपर भी अर्थात् अपचय होते रहनेपर भी ज्ञान बढता रहता है इसिलिये शरीरका घटना बढना ज्ञानके वृद्धि क्षयमें कोई साधक वाधक नहीं। छोटा सूर्य बहुत पदार्थोंका प्रकाशक रहे परन्तु सर्वत्र पूरा प्रकाश—

नो आपने कहा कि जिम प्रकार वीपकका प्रकाश फैलता है वैसं शुद्ध अवस्थामे तीर्थकरोंका ज्ञान गुणका विकाश होनेसे मर्वज्ञताक स्वय्पमें वाधा नहीं यह कथन अदूरवर्शिताको बोधन करता है वयोंकि दीपक पिक्तिका प्रकाश भी अन्तत परिच्छि देश नक ही फेल्टता है सर्वत्र नहीं। यही दशा सूर्यादि प्रकाशकी जाने। इस दृष्टान्नसे ते। खापने तीर्थकरोंको अन्पन्न ही सिद्ध कर लिया जिससे आप अप-सिद्धान्तक नागी वन गये हो। आप मुझे कोई ऐसा दृष्टान्न वनलावें जो प्रकाश स्वरूपसे परिच्छित्र होने पर भी सर्वत्र प्रकाशको फेल्टा देवे।

र्भन पृद्धा था. तपश्चर्यादि क्रमोंका किसने उपदेश किया जिसके अनुष्टानमं आपके तीर्थकर सर्वज्ञ बनते हैं, आपने कर्म केसे बनता है जह कहकर वृथा ही लम्बी चोडी रटन्त करदी। इससे अज्ञान नाम निग्रहम्थानसे पतित हो।

जैन मित्रमण्डलका सप्तम उत्तरपत्र। १

आपनं नो अज्ञान निमहस्यान दिया है सो आप स्वयं ही निरन्थोन्यानुयोग निमहस्थानके पात्र हो ।

आपने अभी कहा है कि शरीरके घटने नढनेसे ज्ञानका सम्बन्ध नहीं है फिर आप प्रतिज्ञा हानि निग्रह स्थानपाती होते हो। आपके कथनानुसार ही यिन शरीरित्व रहे और सर्वज्ञत्व रहे तो क्या वाधा है? ज्ञान आत्माका गुण है। ज्ञानका जीवों में तार-तम्य पाया जाता है। वह तारतम्य बढते र चरम सीमा तक पहुँच जाता है। इस विषयमें सूर्यका दृष्टान्त दिया था किवह एकदेशीय है। यदि वह तारतम्य वढते २ चरम सीमातक नहीं जाता है तो वतलाइये कि आगे कौन रोकता है। आपने बहुज़ताका लक्षण पूर्व ज्ञानसे ज्यादह वनलाया है। महाराज ! पूर्व ज्ञानसे कितना ज्यादह ? उसकी अवधि वतलाइये फिर उससे ज्यादह क्यों नहीं बदता ? और जहां वह ज्ञान पूर्णतासे रुक जाता है वहां उसे कौन रोकता है। विना किसी कारणके ही यदि आप कथन मात्रसे कहते रहेगे तो वह प्रमाणमें नहीं आसकता है।

यह नियम नहीं है कि विना ज्ञान देनेके ज्ञान बढता ही नहीं, देखिये, नवीन आविष्कार करने वालोंको किसने उस आविष्कारका उपदेश दिया है व्याद दिया है तो वही नवीन आविष्कर्ता क्यों कहा जाता है अपका ईश्वर सर्वज्ञ है या नहीं व्यदि है तो उसका ज्ञान उसीको हो सक्ता है जो सर्वज्ञ हो, इसिल्ये अपर सर्वज्ञकी सिद्धि हो जाती है। यदि अपर सर्वज्ञ उसका ज्ञाता नहीं हैं तो आपका इश्वर सर्वज्ञ ही नहीं वनता।

आर्व कुमार सभाका अष्टम प्रश्नपत्र।

३

और जो आपने कहा है—ऋषमदेवजीने काम किया, नाचना, गाना, वजाना, आदि चौसठ कला स्त्रियों को गृहस्थावस्थामें सिखलाई है उसमें प्रश्न है कि वह स्त्रियें उनकी विवाहिता थीं या कोई और अटमसटम थी, यह वात अपने महापुराणादि प्रन्थोंसे स्पष्ट कर दिखलावें, यदि अपनी स्त्रियोंको सिखलाया तो भी सदाचारसे विरुद्ध आचरण सिद्ध होता है, पर स्त्रियोंके सम्बन्धसे कहें तो अत्यन्त हेयकर्म प्रतीत होता है ऐसे कमोवाले तीर्थकरोंको सर्वज्ञ ईश्वर कैसे माना जाय ?

अभियाय यह है कि " त्रराभदेव सर्वजो न भवितुमहिति अमदानारित्वान् परिन्छितत्वान् अति विषयासक्तत्वान् ताहरा प्राकृत पुरुपतन्" मदानारी न होने, एक देशी होने तथा छः चक्ष वर्षसे भी अधिक अति विषयासक्त होनेसे प्राकृत पुरुपकी न्यार्ट मर्वज नहीं हो मक्त । यो यस्ताहशोऽशावसो न सर्वज यह ज्याप्ति जान हेनी नाहिये ।

त्रापमेत्रवा तीर्थक्तकं विषयमं नो प्रश्न किया उपका कोर्ड सन्तोपनक उत्तर नहीं दिया किन्तु प्रक्ररणको छोड कर विष-यान्तरका सद्यार किया, इसी मन्दर्भमं एकं और प्रश्न कुरता हूं। नामि कुन्दरर महत्वी नामक भायांसे ऋषभदेवनी उत्पन्न हुये और उसीसे ऋषभदेवनीके साथ एकं मुमंगला नाम कन्या हुई। यौवनके समय ऋषभदेवनीका मुमङ्गला (नो एकं माता पिताके साथ उत्पन्न होनेके कारण उनकी बहिन थी) के साथ इन्द्र इन्द्राणीने विवाह करा दिया, दृषरी उनकी सी मुनत्दा थी, उन्होंने दोनोंके माथ उ: तथ्न वर्षके लगभग सांसारिक विषय सुख भोगा, पश्चात् मुमगला राणींकं भरत तथा ब्राह्मी यह गुगल नन्मे। ऋषभदेवनीको मित, श्रुति, अवधि, यह तीनों ज्ञान गर्भमें ही थे। अन आप बनलाए कि छ लाप वर्ष पर्यन्त विषय भोगनेवाला एक देशी आत्यन्त आसक्त कभी मर्वज्ञ ईश्वर हो सक्ता है 2

नहीं होमक्ता। कईएक स्थानोंपर उसके विद्यमानतामें भी अ-

१ ७६ क्या हमारे किया भी अन्थेम नहीं है। इस मिथ्या आक्षेप पर आर्यसमाजने उसी समय क्षमा प्रार्थनों कर इस कथा विषयको वापस छिल्पा (जैन मिन्मण्डल)

न्धकार पाया जाता है। और जो आपने ऋरीरधारीत्व हेतुको "स रयामो मित्रतनयत्वात्' इसकी समानता कथन की है यह भी आपकी भूल है नयों कि मित्रातनयत्व हेतुमें शाक पाक जन्यत्व उपाधि है इसिंच्ये किसी मित्रा पुत्रके स्याम न होनेपर ही दूषित होजाता परन्तु तीर्थकरोंकी असर्वज्ञताके साधक मेरे 'शरीरभारीत्व' हेतुमें आपने कोई उपाधि नहीं दिखलाई । उसकी 'यत्र र शरीरधारित्व तत्र २ असर्वज्ञत्वम् ' इसी प्रकार रथ्या प्रक्यादिमें स्पष्ट है, परन्तु आपने अनतक दृष्टानभूत शरीरधारी कोई सर्वज्ञ नही वतलाया जिससे आपकी इष्टिसिद्धि होनाय। और जो आपका यह कथन है कि जैसे परमाणुमें छोटा परिमाण चलता आकाश तक वढं परिमाणकी समाप्ति होती वैसे ही काँहीं ज्ञानकी पराकाष्ठा माननेसे तीर्थकर सर्वज्ञ सिद्ध होते हैं। यह तो आपकी केवल अविचारसे कल्पना। इतने मात्रसे तीर्थकरत्व विशेषता कैसे सिद्ध होजाय? क्या आप सर्वज्ञत्व सामान्यको सिद्ध करते हैं या विशिष्ट सर्वज्ञत्वको सिद्ध करते हैं 2 प्रथम पक्षमें दूसरोंके सर्वज्ञ भी आपको मानने होंगे जिससे आपका सिद्धान्त च्युत होनाता हैं। विशिष्टकी सिद्धि माननेसे तो आप निगृहीत, क्योंकि अवतक आपने मेरे सामने तीर्थकरोंको सर्वज्ञ सिद्ध नहीं किया वह तो विवादास्पद है। आपने आत्माका और ज्ञानका समवाय सम्बन्ध कथन कियां सो अपने सिद्धान्तसे विरुद्ध कहा ऐसी भूल हमने कभी---

जैन मित्र मण्डलका अष्टम उत्तरपत्र।

ε.

आपने कहा है कि हमारा ईश्वर स्वभावसे, सर्वज्ञ है उसमें

क्यों दोष देते हैं। सो क्या यह कोई युक्ति है विल आपने ही कहा था कि सर्वज्ञको जाननेवाला सर्वज्ञ होता है सो क्या आप बतलांवेंगे कि इश्वर (वैदिक) सर्वज्ञको जाननेवाला कौन सर्वज्ञ था विषय यदि था तव तो आपके ही कथनसे सर्वज्ञ सिद्धि हो गई। यदि नहीं था तो आपका ईश्वर सर्वज्ञ कैसे सिद्ध हो सकता है इसका कुल भी उत्तर न देकर स्वभावसे ईश्वरको सर्वज्ञ कहना आपकी उत्तरशैली पर हसी दिलाता है, कृपा कर उत्तर दीजिये।

आपने फिर भी कुछ ज्ञान बढ़ना ही बहुज्ञताका छक्षण किया है सो कुछ ज्ञानके बढ़नेसे आपका तात्पर्य कितने ज्ञानसे है ² स्यों नहीं इसको स्पष्ट करते, व्यर्थको क्यों यह प्रश्न अमटमें डाल दिया जाता है ² ज्ञान बढ़ते २ कहा, क्यों रक जाता है इसमे स्या कारण है ² इस बातका उत्तर आप सबसे पहिले दे देवें तो ने दावसे कह सकता हूं कि शास्त्रार्थ सर्वज्ञ सिद्धिका अभी समास होता है।

दूसरे यह भी बतला दीजिये कि आप किन र द्रीनोंको गगण मानते हैं। ऋषभदेवके विषयमें जो आपने लिखा है वह विथा मिथ्या है। क्योंकि हमारे ग्रन्थोंमें ऐसी कथा कहीं नहीं है।

सेंद्र है कि आप हमारे सर्वज्ञसाधक हेतुओंका एक मी खडन हीं करते और इधर उधरकी वार्तोमें वह जाते है। पंडितजी ! या इसी शैली पर आप शास्त्रार्थ करते हैं!

आपने कहा था कि ''तीर्थक्करा न सर्वज्ञाः शरीरघारित्वात्'' ो मित्रकर ! सर्वज्ञ सिद्धिमें शरीरघारित्व हेतु वाधक नहीं हैं केन्तु साधक है। शरीरघारीसे राग द्वेष विशिष्ट शरीरघारी छेते हैं या नीतराग शरीरघारी होते हैं या सामान्य होते हैं। यदि पूर्व पक्ष होते हैं तब तो सिद्धि साध्यता दोष आता है। यदि द्वितीय पक्ष होते हैं तो विरुद्ध हेत्वामास शरीरघारित्व होता है क्योंकि विना सर्वज्ञके वीतराग शरीरघारित्व हो ही नहीं मक्ता है। यदि तृतीय पक्ष होते हैं तो शंकित व्यभिवारी होजाता है।

आर्थे कुमार सभाका नवमं प्रश्नप्रज्ञ।

ď

अत्र तक आपने मेरे दिये हुये सर्वजना माध्क हेनुमे साध्य वैकल्प दोषका परिहार नहीं किया और नीर्थक्करोंकी सर्वजतांक खंडन करनेवाले मेरे हेतुमे किसी प्रकारका व्यभिचारादि दोप न होनेसे आपका हेतु मत्प्रतिपक्ष भी वसेका वैमा टिका रहा।

- १. ज्ञानावरणीय कर्मको निवृत करनेवाली तपश्चर्याका उपदेश किसने किया जिसके अनुष्ठानसे आप अपने तीर्थकरोंको सर्वज बनात हो, इमका उत्तर नहीं दिया।
- २. आत्माका ज्ञान गुण म्वाभाविक है परन्तु ज्ञानावरणीय कर्म स्वाभाविक नहीं इसमें क्या प्रमाण है ? ज्विक दोनों शुरु कोई नहीं, अनादि हैं। हमारा शास्त्रार्थ जैन मित्र मंडल्से हो रहा है, दिगम्बर हो श्वेताम्बर हो, हम इसके कोई जिस्मेवार नहीं, पहिले इमका कोई निर्णय नहीं किया। जो कुछ मैंने श्री ऋषभदेवजींक विषयमें कहा वह महा मुनि आत्मारामजी आनन्द्विजयजी विरिच्त निर्णयसागर प्रेससे मुद्रित सं० १८८४ ईस्वीका पृष्ट ४९७ आदिसे कहा, इसल्य इस विषयमें आपकी घवराहट निकम्मी मालुम होती है।

- ३. आपकी प्रतिज्ञा मात्रसे तीर्थकरोंको सर्वज्ञ कैसे माना जाय १ जो हेतु दिया था उसका विस्तार पूर्वक खण्डनं कर दिया इसिटिये वीजांकुर न्यायसे सर्वज्ञता तीर्थकरोंमें न पाये जानेसे एक सर्वज्ञसे दूसरा, दूसरेसे तीमरा, उससे चौथा इत्यादि अनादित्व कल्पना अन्य परम्परा नहीं तो क्या है १
- ४. एक देशी तीर्थिकर एक देशी चैत्रादिकी न्याई आन्तिमान्
 भी होसक्ता है, फिर मर्वज कैसे ²
- ५. जहा आप खडे होकर शास्त्रार्थ कर रहे हैं इस स्थान-पर आपके ईश्वरका मर्वज अत्यन्ताभाव है या सूर्यादिके प्रकाशकी न्याई उसका ज्ञान गुण यहा तक फैला हुआ है, प्रथम पक्षमें सर्वज्ञ केसे ? द्वितीय पक्षमे किसी ऐसे एक देशीका दृष्टान्त वतलाए जिसका गुण " अवच्छेत्रावच्छेद ' मर्वज फैलनेवाला हो, अन्यथा साध्य विकलता आपके सिरपर वैसे ही खडी है।
- ६. आपके तीर्थकर शरीरको छोडकर भी सर्वज्ञ रहते हैं या नही ² अन्त्य पक्षमें क्या अल्पज्ञ अज्ञानी हो जाता है या उनके ज्ञान गुणका पर्वथा नाश होजाता हैं, आदि पक्षमें प्रमाण कहें और पिह्ने दिये दोपोका परिहार भी करें ।
- ७. आप मानते है कि हमारे तीर्थकर सर्वज्ञ सर्वदा-किमान तथा द्यालु होते हैं। यदि ऐसा है और इस समय उनका अत्यन्ताभाव नहीं तो जो पुरुष रातको चोरी करते, वेद्यागामी होते इत्यादि, उनको अपनी द्यालुता आदिसे क्यों नहीं, हटा देते जिससे वह भाविष्यमें नरक दु.खका भागी नहीं देखी

जो आपने सिद्धान्त आप ही काट जाना, हमारा ईश्वर तो स्वभाव-से ही सर्वज है, उसमें आक्षेप नहीं आता; परन्तु आप तो अपने सर्वजका पहिले पापावरण मानते और तपश्चर्यासे सर्वज बनाते, उसीमें हमारा प्रश्न है कि ऐसी तपश्चर्या जिससे सर्वज यड़ा जाय कैसे प्रमाण मान लेवें ' हम शरीरधारीत्वस परिच्छिन्नत्व ग्रहण करते हैं इपल्चिये आपके सब आक्षेप निर्मूल हैं। मेरे बहुजत्व लक्षणको न नमझकर वृथा कथन कर दिया।

जैन मित्रमंडलका नवम उत्तरपत्र।

8

आत्मारामके ग्रन्थका प्रमाण देकर दोष देना मिथ्या प्रहाप है। कारण कि आपने यह विचार नहीं किया कि शास्त्रार्थ दिगम्बर जैनियासे हो रहाहै और प्रमाण देते चले श्वेताम्बरोंका। अच्छा होता वैष्णव वैदिक सम्प्रदायका भी प्रमाण देते। यह आपका केवल अरण्यरोदन हुआ है।

नहुज आप मुक्त आत्माको मानते हैं और दृष्टान्त मुझसे मांगत हैं

आप पहले प्रश्नोंका उत्तर नहीं देते हैं इसीलिये नवीन वात कह देते हैं।

बहुंज्ञका लक्षण आपका जो ला इन्तहा न हो और पूर्वी-वस्थासे कुछ बढ़ा हुआ हो, सो क्रपानाथ! यहा क्या आप प्रश्नसे वच सकते हैं ? बहुजका ज्ञान ला इन्तहा क्यों नहीं हो जाता ? क्यों तो वह पूर्वीवस्थासे बढ़ा और क्यों ला इन्तहा नहीं हो सका ? क्या पिल्लिक इस वचन मात्रपर शास्त्रार्थका समय नष्ट न समझेगी? अच्छा हो कृपाकर इसमें हेतु दें कि वह मुक्तात्माका ज्ञान पूर्वा-वग्नारों क्यों तो वटा और क्यों हा इन्तहा नहीं हुआ ² यही फेमला मर्वज मिद्धिका होता है ।

आपका यह लिग्नना कि मेरे ईंग्वरसे आपको क्या मतलब सो पटितजी हमें मतलब क्यों नहीं । मतलब यही है कि आपके कथन और शास्त्रने ही मर्वज्ञ सिद्ध होता है। आपने कहा है कि सर्वज्ञकों जाननेवाला मर्वज्ञ होता है। बतलाइये कि यह वैदिक इंग्वर मर्वज्ञ है उसको कौन जानता है । विना उसका उत्तर दिये मर्वज सिद्धि आपको माननी ही पडेगी।

आपनं कहा है कि विना पढे कोई कुछ नहीं जान सकता, अन्यथा में ही इंग्लिशका प्रोफेसर हो जाऊ। सो महाराज! वालकको म्नन्य पानका उपदेश किमनं दिया था थे और मदन मास्टर जो ३ वर्षका है उसे बढिया गानका उपदेश किसनं दिया था थे इमी प्रकार एक ३ वर्षके वालकको गणितका उपदेश किसनं दिया जिसका लेख सरस्वनीमें आचुका है। खेद है कि आपका क्ष्योपशम न हुआ अन्यथा आप इंग्लिशके मास्टर हो ही जाते। इसी प्रकार विशेष क्षयोपशम तीर्थकरको है इसलिये के किमीसे उपदेशित नहीं थे।

सर्वज्ञ परिपाटी अनाटि है क्योंकि ससार अनादि है और समारपूर्वक मोक्ष होती है। इसलिये आपका यह लिखना कि " मर्वज्ञसे सर्वज्ञ यह अन्ध परम्परा नहीं तो क्या " मिथ्या है नेसे अनाटिकालीन वेदको पढ़नेवाले आपके यहां नही आते है। आपका यह लिखना कि एक देशीय ज्ञानवाला तीर्थकर आन्तिवाला भी होसका ठीक नहीं क्योंकि ऐसा कहनेसे संसारी मनुष्योंमें कोई सत्यवक्ता ही न ठहर सकेगा। आप भी एक देशीय हैं, आप भी मिथ्या ज्ञानवाले ठहरेंगे इसलिये यह नियम नहीं है। ज्ञानावरण कर्म पर द्रव्य है उसका हास होता है इसलिये वह स्वाभाविक नहीं है। यदि स्वाभाविक होता तो उसका आत्मास दूरीकरण न होता।

आपने कौन २ दर्शन प्रमाण माने हैं इसका उत्तर क्यों नहीं देते ²

आर्य कुमार सभाका द्शम प्रश्नपत्र।

तीर्थकर भगवान तथा दूसरे जीवोंकी मुक्तिमें विशेषता है या अविशेषता ?

शरीर त्याग उत्तर कालमें सर्वथा मुक्त हुए तीर्थकर भगवान जिस स्थानको प्राप्त होता है उसका परिमाण वतलावें।

आपके सर्वज्ञ साधक सब अनुमानोंका खण्डन कर दिया निसका परिहार आपसे आज तक नहीं हुआ, में तो ठीक ठीक न्यायराली अनुसार शास्त्राध्र कर रहा हूं आप अपनी घनराहटमें आकर कुछका कुछ कह जाते हैं। जो जो शरीरधारी होता है वह नियमसे राग द्वेषसे ही होता है यह नियम ठीक है जैसे कि रध्या प्रकामें पाया जाता है, और आपके तीर्थकर वीतराग हैं इससे स्पष्ट सिद्ध है कि वह पहिले बद्ध होनेसे अल्पज्ञ थे, इसीमें दों मेरा प्रश्न है कि उनकी अल्पज्ञता किसके उपदेशसे तपश्चर्या करके सर्वज्ञ बने, यह अन तक आपने सानित नहीं किया इसलिये आपके शेष आंकित व्यभिचारि आदि दोष सन कल्पना मात्र हैं।

वैदिक ईश्वरकी सर्वज्ञताके विषयमें कथन किया है इससे आपकोः मतानुज्ञा नाम निग्रह स्थानमें पतित किया है। मैने कहा है कि वैदिक ईश्वर स्वभावसे सर्वज्ञ होनेसे आपके आक्षेपका पात्र नहीं. पर आप तो अपने सर्वज्ञको तपश्चर्यादि साधन करनेसे बतलाते है उसीमें हमारा प्रश्न है कि उस तपश्चर्यामें क्या प्रमाण है कि. अल्पज्ञ देहधारी परिच्छिन्न आत्माको सर्वज्ञ वना देती है। घन्य आपकी ममाधान देेाली आपको ही दुर्वल करती है। मैं जीवकी. बहुज्ञता, मुक्त अवस्या पर्यन्त मानता हूं परन्तु उस अवस्थामें भी वह मेरे स्वभाव सिद्ध सर्वज्ञ ईश्वरके समान सर्व शक्तिमान् वाः सर्वज्ञ नहीं हो सन्ता, क्योंकि परिच्छित्र मौजूद है जैसा कि छोटाके हिप्टान्तसे मैंने कलके व्याल्वानमें स्पष्ट कर दिया था। मुक्तात्मा न निरतिशय ज्ञानवान् परिच्छिन्नत्वात् यन्नैवं तन्नैव जो परिच्छिन्न चेतन हो वह मुक्त होने पर भी निरितराय सर्वज्ञ धर्मविशिष्ट नहीं होसक्ता उसकी निरति सर्वज्ञतामें परिच्छित्रता ही वाधक है।

वालको स्तन पान न सिखाने पर भी पूर्व अनादि संस्का-रसे प्रवृत्ति निर्वाध है। परन्तु सर्वज्ञता नहीं यह दृष्टान्त विषम होकर आपके पितकूल पडता है। मास्टर मदनका राग सम्बन्धी ज्ञान उसके पूर्व संस्कारोंके मले ही सिद्ध करें अर्थात् पूर्व जन्ममें उसने उस विद्याकी शिक्षा ग्रहण गुरुसे की तब ही तो अल्पायुमें निष्ठण हो गया पर सर्वज्ञ नहीं। यदि ऐसा न मानो तो आप भी उसकी न्याई रागमें निष्ठण क्यों नहीं हो गये ?

ज्ञानावरण कर्म आत्माका पर द्रव्य है, इसमें पृष्ठव्य है कि वह परद्रव्यका संत्रन्य कनसे हुआ दसादि कहो तो आपके तीर्थकरोंको, पुनः ज्ञानावरण कर्म आवृत करलेगा। अनादि मानो तो एक स्वामाविक दूसरा विभाविक। इसमें आपने क्या युक्ति दी है? में यही तो वार वार कह रहा हूं कि उस कर्मके प्रावरणकी निवृत्ति किस साधनसे होती है और साधन प्रमाण क्यों माना जाय, तीर्थकरोंको न माननेसे संसारमें कोई सत्यवक्ता हो ही नही सक्ता। खूव कहा, अपने मुंहसे। विना किसी प्रमाण सिद्धिके।

सर्वज्ञ वनाते हो यह शैली आपकी विद्वान् देख रूँगे कि न्याययके साथ फितनी युक्ति प्रतीत होती है।

इसी सत्यतामें तो मेरा प्रश्न है कि वह सर्वज्ञ सिद्ध कर दीजिये जिससे हम उनको सत्य मान सकें। तीर्थकर सर्वज्ञ सिद्ध होनें तो उनकी सत्य वक्तता आप्तपना सिद्ध होने और आप्तता सिद्ध हो जाय तो उनकी सर्वज्ञता सिद्ध होने। इस प्रकार अन्यो-न्याश्रय दोष आपके मतमें प्रवल बना रहता है। इस कालमें मेरे सर्वज्ञता पर प्रश्न वृथा है यह प्रतिज्ञा हानि निग्रह स्थान है।

जैन मित्र मण्डलका द्शम उत्तरपत्र।

(सूक्ष्मादि पदार्थाः कस्यचित् प्रत्यक्षाः अनुमेयत्वात्)

जिस प्रकार अग्नि पर्वतमें अनुमेय है वह किसीक प्रत्यक्ष अवश्य है इसी प्रकार सूक्ष्मादि पदार्थ अनुमेय हैं उनका भी कोई प्रत्यक्षकर्त्ता अवश्य है इस अनुमेयत्व हेतुद्वारा, सर्वज्ञ सिद्धिमें यातो वाधा दीजिये या हमारे तीर्थकरको सर्वज्ञ स्वीकार कीजिये। सर्वज्ञ सिद्धिके प्रश्नोंका उत्तर न देकर आपका वार वार कुछका-कुछ कहना केवल समयको नष्ट करना, और १५ मिनटके टर्नको ज्यों त्यों कर पूरा करना, है। पण्डितजी, यदि आप कुषा कर वह ज्ञानकी कीर्यकारणता सिद्ध नहीं करेंगे, और अनुमयत्व हेतुका म्वण्डन न करेंगे तथा वैदिक ईश्वरकी सर्वज्ञता सिद्ध न करेंगे तब तक आपको सर्वज सिद्धि माननी ही पढेगी।

जन जीवोंमें ज्ञानकी प्रकर्प रूपसे वृद्धि और दोप आवरणोंकी हानि पाते हैं तो कहीं पर वह पूर्णतासे हानि हो सक्ती है जैसे अग्निमें नपाये हुये सोनेमेंसे किष्टि कालिमादि दोप दूर होते हुए निक्कोप होजाने हैं जहा, पर राग हेप और आवरणकी हानि पूर्णनासे है वही हमारा तीर्थकर मर्वज है। इस अनुमानमें वाधा दीजिये अन्यवा मर्वज सिद्धि स्वीकार कीजिये। तीर्थकर सिद्धिमें जो आप दृष्टान्त मानने हैं सो टीक नहीं क्योंकि वादमें दृष्टान्त प्रमाण होता है। अन्यथा आपका बिदक ईश्वर सर्वज किस दृष्टान्तसे सिद्ध होता है।

नृष्टिका आदि उपदेश कौन या ' ईश्वर तो अगरीर है उपके कण्ट ताल्वादि नहीं है इसलिये वह तो उपदेश कर नहीं सक्ता। जो प्रहप न्याख्यान करेगा वह रागादि दोप दूपित अल्पज्ञ होगा इसलिये उसका व्याख्यान अन्यथा (झंटा) भी हो सक्ताहै। तो बेटिक क्रियाओंका मानना अन्य परम्परा सुनरा सिद्ध है। तीर्थकर और इतर मुक्तात्मा दोनोंका ज्ञान समान है दोनों ही सर्वज्ञ है। तीर्थकर सर्वज्ञका स्थान कितना वहा है इस प्रश्नसे सिद्ध होता है कि आप तीर्थकरको सर्वज्ञ मान चुके। अवस्थाके विपयमें पृछ्ते हो मो यह विपयान्तर है। आख तिमिरापहरण होने पर देखनेमे दृष्टान्त है मार्थ्य विकल नहीं, रूप ग्रहण इसका स्थमाव है इसको वारवार कहना पिष्टपंपण है। जो जो शरीरधारी है वह रागद्वेषी है ऐसा निगम नहीं। यह शक्ति व्यभिचारी है क्योंकि योगियोंमें रागद्वेषका अभाव पाया जाता है अन्यथा तपश्चर्या संन्यांस व्यर्थ होगा।

हमने जो हेतु दिये थे उनको कथन मात्रसे दृषित कहना दूषित सिद्ध नहीं करता है।

(वैदिक) ईश्वर स्वभावसे सर्वज़ है, रहो, परन्तु प्रश्न तो यह है कि आपके कथनानुसार उसका कोई सर्वज्ञ है या नहीं ? उत्तर क्यों नहीं देते ?

बहुज्ञताके विषयमें आपका क्हना कि वह ईश्वरके ज्ञानके बराबर नहीं हो सक्ता। परिच्छित्र परिमाण होनेसे, क्यों महाशयनी परिच्छिन्न परिमाणत्वहेतु आपका संदिग्ध विपक्ष व्यावृति है परिच्छिन्न परिमाणत्व आपमें भी है फिर आप क्यों नहीं बहुज्ञ है 2 अथवा परिच्छिन्न परिमाणवाला आपके समान मुक्तात्मा भी है फिर वह बहुज्ञ क्यों वन गया 2 क्या यह व्यभिचार वारण करनेमें आप समर्थ होंगे, और वह बहुज्ञता आपके ईश्वरके ज्ञानके वरावर क्यों नहीं हो जाती ? इस विषयमें आपका क्या उत्तर है 2 मदन मास्टर वालकका दृष्टान्त उपदेशके विपयमें था, अब आप सर्वज्ञके विषयमें कहते हैं। खेद ! आप स्व वचन वाधित हो जाते हैं। सोमी महाराज! आप पूर्व संस्कार कारण मानते हैं फिर क्यों नहीं तीर्थकरमें विशेष क्षयोपशम स्वीकार करते ? उन्होंने उपदेश किसीसे नहीं लिया, ज्ञानावरण परद्रव्य है यह कहा गया है इसी लिये वह स्वाभाविक नहीं है।

सर्वज्ञ रागहेप रहित है इम लिये उनके फिर ज्ञानावरण नहीं आमक्ता है। बन्यका कारण क्याय है. कारणके नष्ट होनेपर बन्धकर कार्य भी नहीं हो। सक्ता है जिसे बीजमे अंकुर जनन सामर्थ्य है पान्तु बीजके जलानेपर वह पापर्थ फिर नहीं रहती है इमी प्रकार सर्वज्ञमें फिर कर्भकर मानर्थ भी नहीं है।

अभिनका अनुवान करने समय आपका अनुवान ज्ञान अभिनके पान नाता है या अभिन ज्ञानक पान आती है १ महाशय वर ! जैसे ज्ञान वहीं परसे अभिनको ज्ञान लेना है वैसे सर्वज्ञ भी वहींसे ज्ञान लेना है।

> आप बहुज़की मीमा बनलानेमें निरूत्तर होते है। आप किन २ दर्शनको प्रनाण मानते है !

आर्थ कुमारसभाका एकादशम प्रश्न पत्र।

और जो आप कहते है कि उपदेशकी क्या आवश्यक्ता है र पानाचरणके हुर हो जानेसे सर्वज्ञ हो जाते है, आपका यह कथन सर्वणा प्रजान पात्र है क्योंकि विना उपदेश कौन कैसे यह जान सक्ता है कि मानाचरण अज्ञानका कारण है। क्या जिन न्यायके आर आचार्य है, उनमें किसीक पडनेक विना ही आप पण्डित बन गये र यदि उपदेश देनेकी आवश्यक्ता नहीं तो किर आप जैन निया मन्दिर क्यों नारी करते तथा अन्ते श्रावकोंको कथोपदेश क्यों करते हो ? और अन अपने पक्षको समाधान करने वास्ते कि हमारे श्रावक गरतींग न पड़ जावें शास्त्रार्थ क्यों करते हो र जैसे आपके क् मतमे उपदेशक विना सर्वज्ञ कन जाते हैं वैसे ही शास्त्रार्थ जो उपदे-वाकी समता रराता है उसके विना ही स्रोग अपने आप सत्यज्ञानी वन जायंगे। मैं नहीं समझता कि आप शास्त्रार्थमे कैसी भूछीभूछी वार्ते कर रहे हैं। आप कहते हैं कि जो कषाय होते हैं वह तादश प्रति द्वन्द्वी कर्मसे नाश हो जाते हैं ,परन्तु यह बात भी तो बतानेसे ही मालूम होगी । अपने आप कौन जान सक्ता है इनलिये बतावें कि वह कौन था जिसने पहिले उपदेश किया । आप मेरे लेखको उल्टा समझकर या श्रोताओंपर भ्रान्ति फैलानेके लिये ,बार २ कहते हैं कि "तुमने कहा है सर्वज्ञको सर्वज्ञ ही जानता है" नया सिहको सिह ही जान सक्ता है ? इस कथनसे आप 'अविज्ञात श्वा जानं ' इम निग्रह स्थानमें पतित होते है, आप पर मेरे विकल्यका तो यह अभिप्राय था कि '' तीर्थकर सर्वज्ञ हैं इस प्रकार तीर्थकरोंकी सर्वज्ञाताको स्वय तीर्थकरोंने जाना अथवा किसी अन्य अल्ग्ज्ञने सर्वज्ञनाको विषय किया है, प्रथम पक्ष दद्यपि सर्वज्ञनाकी असिद्धिमे द्षित है, द्वितीय पक्ष अल्पजमे अनाप्तताकी संभावना होने प्रमाण ही नहीं हो सक्ता और आपके दोष पाये जानेके कारण तीर्धकर सर्वज्ञ सिद्ध नहीं हुये।

मेरे पक्षमें दोब नहीं क्यों कि में ईश्वरको स्वाभाविक सर्वज्ञ मानता हूं। उसका बंद रूप उन्तरंश भी मेरे छिये स्वतः प्रमाण है परन्तु तीर्थकर तो तपश्चर्यादिसे बने मानते हो उसमें आक्षेप कर चुका हूं कि जिन तपश्चर्यासे वह सर्वज्ञ बनते उसमें प्रमाणता कैसे मानी जाय ? पं० जी मेरी ओर ध्यान करें। आपने जो जैन सिद्धान्तसे सर्वथा विरुद्ध ज्ञान गुणका आत्माके साथ समवाय सबन्ध मानकर उसके ज्ञानके बीच कर्मावरण कथन किया यह कथन आपकी न्यायान- मिज्ञताको बोधन करता है। क्या गुण गुणीके बीचमें भी कभी कोई

आवरण देखा गया है ? खांड और उसका मिठास, दूध और उसकी चिक्रनाहट, आम्रफल और उसकी मधुरता वा खट्टांपनके बीचमें भी कोई आवरण देखा या छुना गया। क्या आपने इस समय न्यायसे भी काम लेना छोड दिया है ? और दुनिया भरमें कोई एक दृशनत दिखला दें कि गुण तथा गुणीके त्रीच आवरण हो ? ऐसा दृशनत आपको प्रल्यान्त भी प्राप्त नहीं हो सक्ता। जो आप छुर्वगकी किट्टिकाका दृशनत देकर इष्ट सिद्धि करते हैं, उसमें मैने कईवार कहा कि जिन क्षारादि दृश्यों द्वारा किट्टिका दूर हो जाती है उप किट्टिकाका स्थानी तपद्धयीटि साधनोंको सप्रमाण सिद्ध करों कि अमुक्त आस अथवा अनास उपदिष्ट साधन जीवके कपाय विश्वमक्त इसमें आपने प्रमाणता सिद्ध नहीं कि अब तक सर्वज्ञ मिद्ध न होनेसं सर्वज्ञोक्त तपद्धर्या साधनकी सिद्धि नहीं और अनासोक्तमें वह प्रमाण नहीं। न्यायकी शैलीका अनुसन्धान कों।

जैन मित्रमंडलका एकाद्दाम उत्तर पत्र।

उपदेशके विना यदि क्रान नहीं हो तो वतलाइये कि योगि-योंको जो वढा हुआ ज्ञान होता है उसका उपदेश किसने दिया ' आपके मुक्तात्माओंको वहु ज्ञान किसने दिया था ' कलदिन कहा गया था कि मदनको गाना किपने सिखलाया था ' बालकको दूव पिलानेका किसने उपदेश दिया ' आपने उत्तरमें कहा कि सहकार विशेषसे होता है सो महाराज! क्षयोपशम्को ही संस्कार कहते हैं इस लिये जब बालकादिकमें उतना क्षयोगशम विना उपदेशके ही रहता है, तो तीर्थकरों में विशेष क्षयोगशम वर्षो नहीं होना, अथ- वा नवीन आविष्कर्ताओंको विना उपदेश दिये नेसे वह आविष्कार मुझता है।

दूसरे आपका ईस्तर स्वभाव सिद्धसर्वज्ञ क्यों हो सक्ता है ? क्या प्रतिज्ञा मात्रसे कार्य सिद्धि होती है ? महाराज, हमारे यहां समवाय संबंद और कथंचित् ताडातम्य सम्बन्ध इनका एक ही अर्थ है इसिन्ध्ये गुण गुणीमें हमारे यहां कयंचित् भेद है । आपने कहाकि गुण गुणीके बीचमें कोई आ नहीं सक्ता है सो हल्डीके साथ चूना आजानसे उसकी पीतिमा कैसे नष्ट हो जाती है इसी प्रकार ज्ञाना-वरण पर द्रव्य है, क्याय वश उसका आत्मासे सम्बन्ध हो जानेसे जानादि गुणमें कमी पड़ती है ।

ज्ञान स्वयर प्रकाशक है इन लिये सर्वज्ञ अपनेको भी जानेते हैं और उपदेश भी देते हैं, यदि झान स्वयर प्रकाशक नहीं है तो आग्का ईक्वर सर्वज्ञ नहीं वन सक्ता है।

आपने हमारे प्रश्नोंका उत्तर न दिया जो कि सर्वज्ञ सिद्धिमें प्रमाणभूत है। आपका सर्वज्ञ किसने जाना? वह सर्वज्ञ है या नहीं ? इसका उत्तर दीजिये और भी सर्वज्ञतामें प्रमाण है।

आर्थ कुमारसभाका बाद्शम प्रश्नपत्र।

' सूक्ष्मान्तरित दूरार्थाः कस्यचित्प्रन्यक्षा अनुमेयत्वात् '— अग्नि आदिकी न्याई अनुमेय होनेसे सुक्षादि पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं यह अनुमान भी आपके तीर्थकरोंकी सर्वज्ञताका साधक नहीं क्योंकि इसके साध्यमें 'कस्यचित् ' पड़के संबंधार्यकी प्रतिद्धि नहीं अप्रसिद्धि है अर्थात् अन्यादि दृष्टान्तमें कौनसा अंश साध्य रूपसे लाते हो, आत्मत्व सामान्य माने तो अस्मदादियोंमें सर्वज्ञतापित और उत्तका प्रत्यक्षसे नाघ सप्ट है, इस प्रकारके बाधकी रीतिको गङ्गेशोपाध्याय कृत न्यायचिन्तामणिके वाध-स्थलमें अवलोकन करें। यदि 'कस्यचित्' पर किसी विशेष आत्पाकी सर्वज्ञता विविक्षित हो तो वह विशेष कौन हैं अहन सर्वज मगवान कहो तो अवनक उसकी सिद्धि नहीं हुई अन्य विशेष (अस्मदादि अभिषत माननेसे) आपको अनिष्टापत्ति होगी तथा साध्य विकलतासे भी आप मुक्तनही हुए। जनतक आप माध्य वैकल्यादि वारण न करेंगे। आगे शास्त्रार्थ चलाना जास्नार्थ भौलीसे प्रच्युत प्रनीत होता है। आज तो आपको अनुमानस प्रत्यक्ष पदार्थके साधन करनकी सूझी परन्तु पहिले शास्त्रार्थमे आप जो दोप देने निनका वारण भले प्रकार करा दिया गया है। आन आप वैसे ही आक्षेपोंके लक्ष्य वन द्वुए हैं और आपसे योग्य उत्तर नहीं मिलता, विद्वान् म्वयं निर्णयकर लेंगे इसी लिये लिखिन शास्त्रार्थका प्रारम्भ किया गया है। और यह है कि जिस प्रकार द्यणुकादि कार्योसे परमाण कारणकी मिडि होती है वैसे ही अनुमान मर्वज्ञ तीर्थकरकी सिद्धि हो सकती है। इसमें वक्तव्य यह है कि अनुमानसे सिद्धि करो परन्तु जो २ आप अपने तीर्थकरोंकी सर्वज्ञतामें अनुमान देते हैं वह शुद्ध नहीं उहरता, सान्य न्वैकल्यादि दोप आते हैं जिनका उत्तर देनेमें अप विकल हो इधर उधाकी अप्राकरणिक वार्ते कह जाते हैं। और जो आप जीवके बहुज़ हो जाने पर भी यह कहते है कि आगे और वह अपने ज्ञानको नि:सीम क्यों न कर लेगा इसका उत्तर दे चुँके हैं कि जिस प्रकार एक परिमित पात्र अपने अवंकाशानुसार ही जलादिका आधार

वनता है वैसे ही परिच्छित्र होनेसे जीवकी ज्ञानशक्ति निरतिशय-नहीं हो सकती। आप कोई एक मी दृष्टान्त देवे कि जो चेतन परिच्छिन्न होकर भी नि सीम ज्ञानवाला होने जिसको देख लिङ्ग लिङ्गी सम्बन्धकी स्वष्टतासे आपके सर्वज्ञीका अनुमान हो सके। धन्य हो ! न्यायाचार्य होनेपर भी एक सर्वज्ञता सिद्धार्थ एक दृष्टान्त भी न निकाल सके, ओर जो आप कहते है कि जिसकी पक्टप्यमान हानि होती है उसकी नि:शेषता अवश्य पाई जाती है। शनै राग-द्वेषकी हानि होती आत्माको सर्वज्ञ बना देगी, उसीमे तो मेरा प्रश्न है कि विन साधर्नोंसे रागद्वेष हट जाते तथा आपके मध्य तीर्थनर सर्वज्ञ वन जाते, उन साधनों में कैसे प्रामाण्य माना जाय ? क्योंकि अवश्वस्य अनाप्त वाक्य तो प्रमाण हो नहीं सकता और अब तक हर्वज्ञ सिद्ध न होनेसे आपमें कोई आप सिद्ध नही हुआ, इम बातका ध्यान न देकर, आपने व्यर्थ प्रलाप कर दिया । और जो यह कथन है कि बादमे दृष्टान्त प्रमाण नही तो आप अपने सर्वज साधनके लिये प्रयुक्त सूक्ष्म पूरार्थ इत्यादि अनुमानमें अग्न्यादि-वत् दृष्टान्तका वयों प्रयोग करते ? आप अपने कहेको आप ही काट जाते हैं और विचारे तो मही मेरे साथ किस कथाकों प्रमाण कर रास्त्रार्थ कर रहे हैं, आपने अपने लेखमें तीर्थकरोंकी सर्वज्ञता सिद्धिके लिये वहते हैं कि 'अधुवा वैदिक ईश्वर दृष्टान्त होता है," पं० जी मैं आपके इस कथन पर बहुत प्रसन्न हुआ हूं कि अब आप वैदिक ई्वर मान गये जिसका पिछले शास्त्रार्थमें खण्डन कर रहे थे क्योंकि वादी-प्रतिवादी स्वीकृत अथवा प्रमाण सम्प्रतिपन्न ही दृष्टान्त होता है। जब इस प्रकार वैदिक ईश्वरका आपने स्वीकार कर लिया पिछले शास्त्रार्थ (जगत्कर्ता खंडन विपयक) आपने सर्वया तिलाञ्जलि दे दी और अर्थान्तर निप्रहान्त पाती वन गये।

जैनमित्रमण्डलका हाद्शम उत्तर पत्र।

अनुमेयत्व हेनुसे सर्वज्ञ सिद्धिमे जो आक्षेत आप करते हैं उममें मिद्ध होता है कि आप सामान्यतासे सर्वज्ञ स्वीकार करते हैं फिर विटोपमे प्रश्न करने हैं। अस्तु यिंट इसी प्रकार विवादाध्यसिन-मे विकल्न उटाया जाय तो अग्न विशिष्ट पर्वतका घूम धर्म है या अस्ति रहितका है या अस्ति अनस्ति वालेका या सामान्यका प्रथम पक्षमें दोप आता है, ऐसा कौन अज्ञ है जो अस्तिमान पर्वतको माने और अस्तिको न माने, अकिश्चित्कर दोप आता है। द्वितीय पक्षमें विरुद्ध हेत्वाभास हो जाता है।

कश्चित श्वाहरसे हम मामन्यनासे सर्वज्ञ सिद्ध करते है। फिर विशेष मर्वज्ञ सिद्ध करनेके लिये दूसरा हेतु है, अईत् सर्वज्ञ निर्दोषत्वात्।

न्या ज्ञेयके पास ज्ञानको जाना पडता है, जो परिच्छित्रता ज्ञानको रोकती है। यह बात असिद्ध है आत्मासे ज्ञान गुण ज्यादह नहीं जा सकता है।

परिन्छन्नता आपमे भी तो है। आपका फिर गुण क्यों यहीं तक रुका हुआ है और आप जब छोटे थे तब आपकी परिच्छन्नता वहीं तक क्यों थी ? और अब कैसे वढ गई ? कौर जलके पात्रको दृष्टान्तकी तरह आपके ज्ञान और सम्पूर्ण परिच्छिन्न परिमाणवालोंका ज्ञान कहां तक क्यों वहता है ? पंडितंजी ! जंबे तंक हकावंट और वृद्धिका आप कारण नहीं वतलावेंगे तब तक आपको सर्वजाता माननी पड़िंगी । संसारमें सभी प्रमेय हैं। जो प्रमेय नहीं वह असन खटं विपाण बात हैं। जैसे वैय्या-करणन्यायशालसे अनिमज्ञ है तो उसे वैय्यायिक जानता है, जो वैय्यायिक इंग्लिशसे अनिमज्ञ है उसे इंग्लिश मास्टर जानना है, संसारमे ऐमा कोई मी पदार्थ नहीं को प्रमेय नहीं हो । सारांश यही है जो प्रमेय नहीं है वह कोई चीज नहीं और प्रमेय उसे ही कहते हैं जो किसी न किसीके ज्ञानका विषय हो ।

जिन पदार्थोंको हम अनुमान प्रमाणमे जानते हैं उनका भी-कोई साक्षान करनेवाला अवन्य है, इसी प्रकार जो आगमसे ज्ञान किया जाता है उम आगमका प्रतिपाद्यिता भी माक्षात कर्चा अवस्य है, अन्यया आगमनिर्दिष्ट पदार्थीमें यथार्थता नहीं आ सक्ती है।

आपके वेद्से मम्पूर्ण पदार्थों का ज्ञान होता है या नहीं: यदि नहीं होता तो वह सम्पूर्ण पदार्थों का प्रतिगदक नहीं हो सक्ता, जिन पदार्थों का वह प्रतिगदक नहीं है व मान्य हैं या नहीं; यदि है तव तो वेदाः प्रमाणम् पद क्यन मिछ्या पडता है, यदि मान्य नहीं है तो पदार्थ होते हुए भी उनका अभाव मानना मिछ्या प्रतीति है, यदि वह मंपूर्ण पदार्थों का ज्ञान कराता है तो उनका प्रतिपाद्यिता तथा श्रोता दोनों ही सर्वज होने चाहिये। दूसरी वात—वेर्द आपके पोरुषेय हैं या अपीरुषेय ? यदि पौरुषेय हैं तो उनका रचिर्ता अल्य ज्ञानी और सरागी है या सैर्वज वीतरांगी है ? यदि अर्ल ज्ञानी और सरागी है तब तो उसका बनाया हुआ वेद प्रमाणमें नहीं आसकता,

जिस प्रकार कि अल्प ज्ञानी सरागी पुरुपोंके बनाये हुये नाटकांदि-यदि उसका रचयिता सर्वज्ञ और वीतराग है तो जो रचयिता है वहीं सर्वज्ञ वीतराग क्यों मान्य नहीं है ! फिर केवल ईश्वरको सर्वज्ञ कहना मिष्या ही है। यदि वह ईश्वरक्तन है तो वतलाइये कि वेद राज्यमये है या ज्ञानमय । यदि शब्दमय है तो वह ईश्वर कृत नहीं हो सक्ता है, क्योंकि कंट तालु आदिने विना राज्यकी उत्पत्ति हो नही सक्ती है, ईचर आपका अशरीर है इस लिये उसके द्वारा शब्दी-स्पादन हो नहीं सक्ता है, यदि वेद ज्ञानमय है तो असंमद ही हैं क्योंकि ज्ञान आत्माका धर्म हैं। वह रचा क्या नायगा² इसलिये नेरको ईश्वरकृत कहना ही मि॰पा है, इनिलये किसी पुरुष विशेष कृत ही मानना ठी ह है और वह पुरुष राग द्वेष विहीन सर्वज्ञ होना चाहिय। अन्यया वेटोंको प्रमाणना नहीं आसक्ती है, इस प्रकार आपको उभयत पाशारज्जु न्यायसे सर्वेज्ञ सिद्धि अथवा वेंद्रको अन्रमाणता माननी ही पडेगी।

आर्य कुमार सभाका त्रयोद्शम प्रश्न पत्र।

प्रमेयर्गपत्रमार्तण्ड परिच्छेद चतुर्थ ग्रष्ठ १८२ पर प्रभाचन्द्राचार्य-ने बड़े समारोहसे समवाय पदार्थका खण्डन किया है, प्रन्थ मेरे पास मौजूदं है देख छें 'नर्जे चायुन सिद्धान्त मांधार्याधार ' इत्यादि प्रन्थको ने माळून आप आज क्यों पद पढ़े पर स्वलित होते हैं ' मैं कथिबतादात्म्य सम्बन्ध और समवाय सम्बन्धको जैन न्यायाचार्येनि कहीं भी पर्याय स्थासे नहीं किया बतलार्वे ऑपको उनसे वंडा प्रमाण मानू ! या ओपके आचार्योको आपंकी प्रक्रियामें प्रमाणिक समझा जाने । विद्वान्-लोग -पहकर देख लेकेंगे । जैन न्यायका मैं पण्डित नही था आप कैसे हैं ।

पं जी आप सर्वज्ञताके प्रकरणको छोड़कर वेड पौरुषेय है इत्यादि विषयान्तर संचय करते हैं अर्थान्तर निग्रहके भागी बनते हैं तो भी संक्षेपसे सुनिये, वेड ई्रक्रीय होनेसे मैं किसी पुरुष प्रणीत नहीं मानता, शब्दार्थ सम्बन्धाविन्छल ईरक्रीय ज्ञान ही वेड है। यदि विशेष परिष्कार सुननेकी उच्छा होतो स्वतंत्र विषय चलाकर विचार करलें। प्रकृति विषयका त्याग न करें। हल्डीके चूना आजानेसे पीतिमाका नाश विषय हण्टान्त है मैंने तो आपसे पूछा था कि आत्मा गुणी उसका ज्ञान गुण जैमा आपने माना भी है उसके मध्य कोई आवरणका हण्टान्त बनलावें।

ज्ञानका स्वपर प्रकाश मानकर मवैज्ञोंको अपनी सर्वजनाका ज्ञान तथा उनके उपदेशकी प्रमाणता कथन करते हैं साथ २ कहते जाते हो कि उपदेशकी कोई आवश्यक्ता नहीं और साथ हो कहते हैं कि सर्वज्ञ तिर्थिकर उपदेश भी करते हैं फिर वह किस लिये करते हैं क्यों करते हैं 2 आपका पूर्वीपर विरोध ध्यान करो।

आप जो नवीन आविष्कर्ताओं के दृष्टान्त उपदेश विना ज्ञानकी प्रकर्पता कथन करते सो ठीक नहीं क्यों कि प्रथम किमी विषयमें निपुण हुआ पुरुष विषयान्तरमें संस्कारों की प्रवलतासे विशिष्ट ज्ञानको पालेता है। एक प्रन्थमें निपुणमित कोई पुरुष तिद्वष्यक प्रन्थान्तरमें स्वयं कुशल होसक्ता है परन्तु यह नहीं, उमको पहिले किमीका उपदेश कदापि न हुआ हो। ज्ञान ज्ञेयके पास जाता है या वह जोय ज्ञानके पास आता है इत्यादि विकल्प कैसे प्रकरण संगत है?

धुनिये, मेरे मिद्धान्तमें तो आत्मामें समवाय सम्बन्धसे और विषयमें विषयता सम्बन्धसे ज्ञान उत्पन्न होता है जिसका कम, आत्मा, मनसा संयुज्यने मन इन्द्रियेण इन्द्रियमर्थेन, इत्यादि हमारे आचा-येनि छिला, पर मे नहीं समझना कि आप विषय छोड, किघर की बाते करते है।

जैनमित्र मण्डलका त्रयोदशम उत्तर पत्र

अार थोडा पूर्वापर देखिये और समझनेकी चेष्टा कीनिये, फिर आप ऐमा न कहेंगे। महाराज! जैन दर्शनकी अपेक्षाको समझ लीनिये, एक जगह समबायको पर दरीन समझकर खण्डन किया है, दूमरी जगह म्व सिद्धान्तकी दृष्टिसे मण्डन किया है, और वेट पौरुपेय हैं या अपोरुपेय श यह प्रश्न विषयान्तर नहीं है, जो बान मर्वज सिद्धिमें साधक है उसे ही आप विषयान्तर कह देते. है। पिंडनर्जा! ऐसा ही प्रश्न ईधरकी सर्वज्ञता पर ही था जिसका उत्तर आप देने ही नहीं।

आपने ऊहापोहसे ज्ञानकी वृद्धि स्मय त्वीकार कर ली, नीर्थकर फर्वज्ञ होते हुए उपदेश दे सक्ते है वे शरीर विशिष्ट हैं, इपमे कोई वाधा नहीं शर्मक्ज उपदेश देते है इससे यह नियम नहीं हो जाता कि निना उपदेशके ज्ञान हो नहीं सक्ता श्वातमा और ज्ञानावरणमें संयोग सम्बन्ध है। हल्दी चृनेके मिलनेसे जैसे तीसरी उशा हो जाती है वैसे ही आत्माकी तीसरी दशा हो जाती है।

पंडितजी ! आप कहते बहुत हैं लिखते बहुत कम हैं क्या यह कमजोरी नहीं हैं ² अनुमेयत्व हेतुसे सर्वज्ञ सिद्धिमें जो आप साध्यविकल दोष कहते हैं. वह ठीक नहीं हैं क्यों कि पर्वतीय विद्वि किंसी न किसीके प्रत्यक्ष होती है, इसमें सामान्य प्रत्यक्षत्व साध्यों ये है फिर क्यों नहीं सर्वज्ञ सिद्धिमें साधक ही है।

पंडितर्जी! मुक्तात्मकी राकछ वगैरह पूंछना प्रकरणान्तर नहीं है ! अच्छा हो यदि आप पहिले हमारे सर्वज्ञ साधक अनुमानमें वाघा दें, फिर दूसरी वार्त छेंडें तो जलंदी शास्त्रार्थका फिलतार्थ वैठी हुईं समाजंपर विदित हो जायं। आपने बहुजनाके प्रश्नको क्यों नहीं स्पष्ट किया । क्या यह सर्वज्ञ सिद्धिमें अनिवार्य हेतु नहीं है ! ईश्वर सर्वज्ञका ज्ञान कौनसा सर्वज्ञ करता है। तीसरे अल्यज्ञता स्वामाविक है तो वह कॅमीवेशी रूप क्यों होती है !

ज्ञानावरणका बन्ध क्यों नहीं होता है ² इस विषयमे दृशन्त चांबलके छिल्केका है, चांबल छिल्केसे अलग होनेपर फिर बन्ध विशिष्ट तथा उत्पन्न शक्तिवाला नहीं होता है।

इस विषयका खुछासा करनेपर भी आप बार २ कहते हुए अज्ञान नामंक निप्रह स्यान पाती हैं।

ज्ञानमें अन्त नहीं पड़ता है । ज्ञानज्ञेयका एकदेशमें रहना नियम नहीं है ।

ऑर्थ कुमार सभाका चंतुर्देशीम प्रश्न पेत्र।

जीवात्माके ज्ञान वृद्धिके विषयमें और मी सुन हैं जैसा कि एक एक रुगया अपनी वृद्धिमें चौंसट पैसों तंक बढ़िंग क्योंकि रुपयेके पैसे ६४ ही हो संकते हैं और पैसे तक ही कॉर्म होता दीखता है। तीसरे अनन्त लामादृद रुपयेके पैसे नहीं ही सकते और नाहीं पैसेसे बढ़ता हुआ चौंसठ पैसेकी संस्थासे अधिक बढ़े

सक्ता है वैसे ही हमारे सिद्धान्त्मे जीवका ज्ञान मुक्तावस्था तक वड सका है और अधम योनियों तक घट सका है। प्रहिच्छित्र होनेसे उसका ज्ञान सर्वथा नि सीम नही माना जा । सक्ता अभिप्राय यह है कि अत्मत् भावनासे जीवात्माका ज्ञान परमात्माकी सहायता पाता हुआ मुक्ति पर्यन्त बड सक्ता है ज़ैसा कि पुरुष दूसरेकी सहायता पाकर अपनी शक्तिसे अधिक काम कर सकते है। जितना जिसके अन्दर सम्भावित हो परन्तु सीमाको उल्लंघन करके कोई पुरुप किसी वोझको उठा नहीं सक्ता जीवात्माकी ज्ञान वृद्धिके विषयमे जानिये। आपने अनतक एक दृष्टान्त नहीं वतलाया जो परिच्छित्र होकर भी अनन्त ज्ञानवाला हो सके अतः दृष्टान्त सिद्धि आपके मतमे बनी रही और जो आप सर्वज्ञ परिपाटीको कहते वह अन्य परंपरासे दूषित जानिये । पंडितजी जरा विचार तो कीजिये जन तक आप तीर्थकरोंकी सर्वज्ञताका स्वरूप सिद्ध ही न कर सकें पुन. उनकी परिपाटीको अनादि कथन करना निधनका अपने आपको छक्षपति कथनके समान प्रतीत होता है और जो ज्ञानावरण कर्मको परद्रव्य मानकर अपना पहा हुडानेका मार्ग निकाला सो हमारी पूर्वकी कोटि वनी रहनेसे वाल मनोमोहन मात्र है क्योंकि आपनं ज्ञानावरण कर्ममे होनेवाले आक्षेपका समाधान नही किया, और उसकी बांधक तपश्चर्याकी प्रमाणता भी सिद्ध नहीं की गई। और नो तारतम्य है वह कही सीमा तक नाता है इसिलये नीवा-त्माके ज्ञानके तारतम्यकी जहाँ समाप्ति हो वह सर्वज्ञ तीर्थकर हैं यह कथन आपका अन तक प्रतिज्ञा मात्र ही बना रहा। यों तो हम भी कह दें कि हमारा स्त्रमाव सिद्ध ईश्वर ही सर्वज्ञ मान छेना

चाहिये, कई जन्मजन्मान्तरोंक बन्धनमें पड़े हुए तीर्थकरोके आत्माको कैसे सर्वज्ञ मान सकें जब कि वह एक्द्रेशी जीव हैं। और जो नवीन विज्ञानका आविष्कार करते हैं वह भी नि.मीम नही ऐसे कथन तीर्थकरकी सर्वज्ञ सिद्धिमें अरण्यरोदन समान है निरनुयो-च्यानुयोग पर्य नुयोग आप पर ही यटिन है। पढ़नेवाले तत्वद्र्जी नान र्रेंगे यही दशा प्रतिज्ञा हानि कथनकी नानो । और नो स्वर्शनकी सिद्धि किये विना मेरे सर्वेज पर विकल्प करते है कि आपका ईश्वर सर्वज्ञ है या नही इत्यादि यह आपकी अनभिज्ञता बोधन करता है चयोंकि मेरे दिये दोषोंका परिहार किये विना ऐसा आक्षेत्र करनेसे मतानुज्ञाके अन्त. पाती हो शरीर धारित्व हेतुके सब दोषोंका बारण कर दिया जाय । आप पिष्टपेशण करते और इयर उधरकी व तोंसे छेखको बढा देनेसे ही पांडित्य नहीं होता और दिये ह्तेत्वामास साध्य विकल आदिका आपने कोई उद्घार किया । आप अपने तीर्थकरोंको जिस प्रकार सर्वज मानते हैं मैं उसमे दोप दे रहा हूँ और प्रेमयकमलमार्तण्डादिके दिये अनुमानका भले प्रकार खण्डन किया । अब आप कोई नई युक्ति निकार्ले निवसे तिर्थकर सर्वज सिद्ध हो सर्के। पिष्टपेषणसे काम न चलेगा। सर्वज्ञका जाननेवाला सर्वज्ञ होता है ऐसा लिखकर मेरी पंक्तिका उल्टा अर्थ समझते हैं। मेरे विकल्पोंको सुक्ष्म दृष्टिसे देखों और पंक्तिस्पष्ट किये अभिनायको समझो। केवल उत्तर-शैछीपर हास्य आता है इतना लिखकर ही कुत २ न हो सकेगा। आपने जो मुझे हक्ष्य करके, कथन किया है कि आपका ज्ञान भी वचपनकी अपेक्षा वढ गया है, नहीं तो आप प्रोफ़ेसर

कैसे वन जाते, इसका उत्तर यह है ज्ञान बढे पर मेरा ज्ञान भी कोई अनन्त नहीं अनेक पदार्थ हैं कि जिनकों में नहीं जानता क्योंकि में परिच्छित्र हूँ इस कथनसे आपको ही अनिष्टापित्त है इतने मात्रसे आपके तीर्थकरोंकी सर्वज्ञता सिद्ध नहीं बिलक इससे तो उल्टी अल्पज्ञता सिद्ध हो गई क्योंकि अनन्त तीर्थकर भी मेरी तरह परिच्छित्र ही ये। न्यूटनादि आविष्कर्ताओंके दृष्टान्तरों भी आपकी इ्ष्टिसिद्ध नहीं। उत्तर लिख चुका हूँ कि परिच्छित्र होनेसे उनका ज्ञान मादूद है लामादूद नहीं। बहुज्ञताके विषयमें उत्तर लिख दिया गया ध्यानसे पढ़ा करें। मेंन तो पूछा है कि तीर्थकरोंको ज्ञानका स्वग्की न्याई सर्वत्र फैलाव होता है या सब पदार्थीका उनके स्वरूपमें अक्स पड़ता है। परिच्छित्रका अपरिच्छित्र फैलावमें दृष्टान्त कहें। यदि मब पदार्थीका अक्स उनके सरूपमें मानो तो छोटे दर्पण सदश तीर्थकरके स्वरूपमें अनन्त पढ़ार्थका प्रतिविम्न कैसे ?

जैन मित्रमण्डलका चतुर्दशम उत्तर पत्र।

पहले आपने यह भी कहा था कि सर्वज्ञ है और सर्व शक्तिमान है वह नरकमे जाते हुएको बचा क्यों नहीं लेता ² पंडितजी । यह दोप आपके यहा ही आता है। आपका ईश्वर ही अज्ञो जन्तु रती शोय—मात्मन सुख दु खयोः ईश्वर प्रेरितो, गच्छेत् स्वर्गम्या व्यभ्रमेव वा, इस कथनसे नरक भेजनेवाला सिद्ध होता है। आपका ईश्वर ही कर्तृताके कारण अनर्थोंका रचिता सिद्ध होता है।

हमारे तीर्थकर सर्वज्ञ वीतराग हैं इस्छिये यह दोप छागू नही । यदि उपदेशके विना ज्ञान ही नहीं हो तो वतछाइये हॅसको

नीरक्षीरका विवेक कौन सिखलाता है। इस लिये हंम्कार पूर्व-भवका तीव होनेसे विना उपदेशके भी ज्ञान स्वयम् हो जाता है।

निनका संस्कार मन्द है उन्हें ही उपदेशकी आवश्यकता है। अल्पज्ञतामें जो तारतम्य पाया जाता है उसका दृष्टान्त दीजिये और बहुज्ञता आगे क्यों नही जाती ? पंडितजी! रुपयेका दृष्टान्त तो आपने हास्यकारक ही कहा है। क्या रुपयेके सोल्ह और ६४ दुकड़ेकी कल्पनाकी तरह क्या अधिक कल्पना नहीं होसक्ती है ? यह कल्पना मात्र है, कितनी ही करलो इस कल्पना रूप दृष्टान्तसे क्या विना हेतुके बहुज्ञता परिमाण सिद्ध होगया ?

आपका हेतु न देना और दिनसे गोलमाल ही करते जाना नया सिद्ध करता है ' पंडितजी! रारीरधारित्व हेतुंक विषयमें , फल कहा गया था कि यह हेतु रांकित विपक्षवृत्ति है या रारीर धारित्व भी रहे और सर्वज्ञ भी हो इसमें नया बाधा है ' और आप रारीरधारित्वसे रागादि विशिष्ट लेते हे या विरुद्ध लेते हैं या सामान्य ' रागादि रहित लेते हैं तो विरुद्धहेत्वाभास है । विना सर्वज्ञके राग रहित रारीरधारित्व हो ही नहीं सक्ता ।

राग सहित छेते हैं तो सिद्ध साध्यता दोष आता है और सामान्य छेते हो तो व्यभिचारी १ पंडितजी, शरीरधारीत्व हेतु जीवोंमें समान होनेपर भी तरतम भेद कैसा १ हम कहते हैं ईत्र्यर असर्वज्ञ जीवत्वात् अस्मादारिवत् इससे ईस्वर भी सर्वज्ञ नहीं सिद्ध होता। अन्यथा दृष्टान्त दीजिये। आप सर्वज्ञाभाव एक देशमें और एक काल में करते है या सर्वत्र सर्वकालमें १ यदि एक काल एक देश करते हैं तो अन्यत्र अन्य कालमे सर्वज्ञाभाव मिद्ध नहीं हो सक्ता है। सर्वत्र सर्वद्रा करते हैं तो निषेध कर्ता ही सर्वज्ञ वन जाते हैं।

इसी प्रकार प्रत्यक्षसे सर्वज्ञभाव सिद्ध नहीं हो सक्ता, क्योंकि इन्द्रिय प्रत्यक्ष अला देशीय है, अतीन्द्रिय आपके यहा असिद्ध ही है। अनुमान प्रमाण उल्टा साधक ही है।

तथाहि

तीर्थकराः सर्वज्ञा सर्वथा निर्दोपत्वात्—जो सर्वज्ञ नहीं, होता वह मर्वथा निर्दोप भी नहीं होता जैमा रथ्या पुरुष। दूसरा अनुमान सर्वज्ञ सिद्धिमें "तीर्थकरा सर्वज्ञा तद्यहण स्वभावत्वे सित प्रश्नीण प्रतिवन्ध पत्ययत्वात्" यदि आप सर्व उत्मान पुरुषोका ज्ञान करहें तो उसका निषंध कर सक्ते हैं अन्यथा नहीं। और ज्ञान करनेपर सर्वज्ञना अनिवार्य हो जाती है अभाव प्रमाण तो हो ही नहीं सक्ता। गृहीत्वा वस्तु सद्धाव स्मृत्वा च प्रतियोगिनं मानस नास्तिता ज्ञानं जानतेऽक्षानपक्षया।

आर्यकुमार सभाका पंचमद्राम पश्चपत्र।

ज्ञानावरणका आत्माके साथ संयोग सम्बन्ध है वह संयोग अन है वा किसीसे जन्य है ' आद्य पक्षमे उसके निवृत्त होनेमें कोई युक्ति नहीं । अन्त पक्षमे जिम कारणसे वह सयोग आत्मासे उत्पन्न हुआ, फिर मोक्षमे भी उसी कारणसे ज्ञानावरणका संयोग हो जानमे क्या वाधा ' हल्डी चूनेके मिल्लानेसे जैसे तीसरी दशा हो जाती है वैसे कौनसी वस्तु आपके जीवात्मामे मिलाई गई, जिसके मिल्लेसे तीर्थकर सर्वज्ञ वन गये ' कई वार पूछा उत्तर नहीं आया । अच्छा पडितजी ! तीर्थकरोंकी सर्वज्ञता सम्बन्धी एक दो

चार्ते और पूंछता हूं ; शरीरधारित्व कालमें तीर्थकरं उपदेश करते हुए जमीनके साथ स्पर्श करते हैं या नहीं 2 यदि नही करते तो कितने ऊंचे रहते हैं 4 और करते हैं तो साधारण मनुष्योंसे क्या विशेषता ? आपने कहा था कि महापुराणमें श्री ऋपभदेवजीकी कथा आई है उन्होंने ग्रहस्थावस्था सो निकाल कर सुना दें, मेरा संतोष हो जावे। विद्वानोंका काम हठ करना नहीं।

पडितजी! रुपये पैसेके दृष्टान्तमें जो आपने कहा, उसे सुन कर मुझे भी हांसी आती है, क्या रुपयेके पैसे चौसउसे अधिक भी हो सकते हैं ? क्या कहते हो ? ध्यान करें।

"अज्ञो जन्तुरनीशोऽश्म् " इत्यादि जो आग्ने पाठ पढ़ा है वह किस स्थानका है शमें तो कर्मानुसार ईक्करीय मृष्टिमे व्यव-स्था मानता हूं। मला में भी पृत्रता हूं—िक आपके सर्वत जब उपदेश करते हैं तो इच्छाके विना करते हैं या निरिच्छ हुए करते हैं शयदि निरिच्छ वह तो इप्टांत कैसा, इच्छासे कहो तो क्या उनमे पुन रागादि दोप बने रहनेसे अल्पज्ञता रही। इंसके नीर-सीर सर्प नकुल आदिके विषयमे उत्तर सुनें। जीवके पिछले संस्का-रोंसे तत्तत् शरीरमें प्रवृत्ति होती हैं इतने मात्रसे क्या इंसादिकी चेष्टा लामादूद है शक्या इंस किसी स्वभावसे अन्य शक्तिमें भी बढ़कर अन्त शक्ति हो गया था शनकुल सर्प छोड़कर क्या सिं-हको भी मार सक्ता है श ईश्वर असर्वज्ञ जीवत्वात् इस अनुमानसे यही बात निक्ली। " वृद्धिपिछतो मूल्हापिन्याय"

१ महापुराण खोलकर उसी समर्थ दिखा दिया गया या (जैनिमत्रमण्डल)

ज्ञाप अर्ग ईश्वर तीर्थकर भगवानको सिर्वज्ञ सिद्ध करते २ अल्यज्ञ ज्ञागए हो, धन्यवाट करता हू कि मेरी इप्ट सिद्धि हो गई। वाह! मेर भारको आपने सभाल लिया। मित्रोंका यही काम है। यदि प्लमं मेरे ईश्वरका ग्रहण करोतो जीवत्वहेतु स्वरूपासिद्ध है। क्यों-कि मेरा ईश्वर जीव नहीं। आप ही अपने ईश्वरको जीव मानते हैं।

जैनमित्रमंडलका पंचद्शम उत्तरपत्र। नर्वन मिहिके विषयमें जो अनुमान माला टी गई है, आपने उनको लुआ तक नहीं और बहुज्ञताका कुछ भी निराकरण नहीं किया।

जन नीवोमं ज्ञानकी प्रक्षि यृद्धि है तन क्यों नहीं वह सर्व-जना तक नानी, दमसे सामान्य मर्वज सिद्धि माननी पडती। अन विटोप तीर्थकरमें मर्वजना मिद्ध की जाती है " तीर्थकरा सर्वजा निटोपन्त्रान् रागादयो दोषा नदभाव अर्हन् परमेप्टिनि" नथा च व निटोप हैं युक्तिमें अविरुद्ध वाणी होनेसे व अविरुद्ध वक्ता है। ममार मोक्ष व्यवस्थान्यथानुषय होनेसे व ससार मोक्ष व्यवस्था युक्तिसे अविरुद्ध मिद्ध है इसल्वियं तीर्थकर निटोप होनेसे सर्वज हैं यह नात इतर व्यवच्छेदसे सिद्ध हो जाती है।

नीरक्षीर विवेक दृष्टान्त उपदेशके विना भी ज्ञान होता है दम विपयमे था न कि बहुजतामें फिर आपने स्वय खुशी भी मनाली और म्ययं समाधान स्वीकारना भी समझली । धन्य है आपकी समज पर !

ज्ञानायरण कर्मका जीवके साथ अनादि सम्बन्ध है। न्यक्ति-की अपेक्षासे वह सादि है और प्रवाहकी अपेक्षासे अनादि है। अनादि होनेपर भी उसका अन्त होता है। जनतक कषाय रहती है तनतक आनावरण कर्मका बन्व होता है और कषायक नष्ट होने-पर बन्ध नहीं होता। जैसे वीजमें अंकुर उत्पादन शक्ति है परंतु बीजके जलाने र वह सम्बन्ध नष्ट होजाता है।

पंडिनजी । तीर्थकरमें सर्वज्ञता विशेषतासे सिद्ध करते हैं न की जीवन्वसे, आप परमात्माको जीव नहीं मानते हैं क्या वक्या वह अजीव हैं व

तीर्थकर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रके परम प्रकर्षसे सर्वज्ञ होगय है उनका परम प्रकर्ष प्रतिपक्ष क्षयसे होजाता है। रुपयेका देण्टान्त फिर भी आप नहीं समझे पंडितजी वह कल्पित मेद ऐसा ही है जैसे समानाकार नोटमे १०) २५) ५०) १००)की कल्पना की जाती है 'पडितजी पहले तो दृष्टान्तसे सिद्धि नहीं होती फिर दृष्टान्त भी आप स्त्रयं नहीं समझे और देडाला, बहुज्ञता और अ-ल्पज्ञतामे कारण बतलाईये। प्रमेयकमलमार्तण्डके १५२ वें पंत्रसे लेकर १५५ वे पत्रतक देखिये।

आर्थ कुमार सभाका षोडशम प्रश्नपत्र।

आपने प्रमे० कम०के समबाय सम्बन्धमें उत्तर नहीं दिया, मुक्तावस्थाम तीर्थकर जीवोंका कोई परिमाण नही बतलाया कि कितने लम्बे चौड़े हैं।

सर्व शक्तिमान तीर्थकर भगवानका इस स्थानमें अत्यन्ता-भाव है या भाव है। प्रथम पक्षसे वह व्यापक न रहनेसे असर्वज्ञ द्वितीय पक्षमें वह इस शास्त्रार्थमें उनका खण्डन करनेवाले मुझको क्यों नहीं रोकते? मेरे ईस्वर यह दोष नहीं क्योंकि हम कमीनुष्ठानमें जीवोकां स्वतंत्र तथा फल भोगनेमं परतंत्र मानते हैं। आप ऐसा मानेंगे तो अपसिद्धान्तकी आपत्ति होगी। महापुराणके विनयमे आपने अवतक कोई पाठ निकाल कर नही सुनाया जिससे मेरा श्री रिपभटेवजीक विषयमें मन्तीय होजाता और तीर्थकरोंक आ-स्माको परिणमन स्वभाववाला मानंत है तो अनुमान हो एका है कि जन तीर्थकरा अनित्या भावितुमईन्ति परिणामित्वान् वटादि-वन् घटपट आदि पटार्थोकी न्यार्ट परिणामी होनेसे नेन नीर्थकर अनिन्य है इस प्रकार सर्वजनाका सावन करना तो दूर रहा। आपने ' ईंड्बर अमर्वज्ञ ' टम अनुमानसे आपने ईव्चरको नीवत्व हेतुनं न्यय अभवंज करा दिया मेर पत्तकी सिद्धि होगई। मेर किसी शनुमानका नो नीर्थकरोकी अप्तर्वज्ञनामे दिये कोई उत्तर नहीं दिया । जो समनायक स्त्रीकारमे आपने प्रभावन्द्रका मन त्यन किया वह उम एछमे मर्क्या नहीं, कोई पक्ति स्पष्ट पहकर राना है जिममे प्रतीति ो, कि मनवाय स्त्रीकार है या मुझे कहा में सम-वायके मण्डनका ग्रन्थ सुनाता हूं।

मंग कियी प्रथका उत्तर न आनेसे सिद्ध हुआ कि नेन तीर्थ-कर मर्वदा नहीं विज्ञान लोग पाठ करके स्वय निर्णय कर लंग ।

जैनिमत्रमण्डलका पोडशम उत्तरपत्र।

सर्वज्ञ सिद्धिके विषयमे आपका यह कहना कि विना सर्वज्ञ-के कोई सर्वज्ञको जान नहीं हो सक्ता है सो आपका बेट्कि ईज्यर मर्वज्ञ है या नहीं 'यदि है तो उसे कीनसा दूसरा सर्वज्ञ जानता है वहीं सर्वज्ञ हो गया। यदि नहीं है तो वह ईस्वर अल्पज्ञ अवस्य है। इसका कुछ उत्तर नहीं दिया गया। मुक्तात्माकी बहुजता क्यों नहीं आगे बढ़ती? जीवों में अल्प-ज्ञता जब स्वाभाविक है तब तारतम्य कैसा पाया जाता है । इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया गया। मर्वज्ञका निषेष आप सर्वत्र सर्वदा कैसे करते हैं ?

हमारे अनुमेयत्व हेतुमें आप एक भी दोष न दे सके इसी प्रकार प्रक्षीण प्रतिबन्ध प्रत्ययत्व हेतुका आप कुछ भी खण्डन नहीं कर मके इसिल्ये सर्वज्ञ सिद्धि अनिवार्य है।

अत्र हम आपके ही प्रमाणभूत शास्त्र द्वारा सर्वज सिद्धि वनलात है।

ये ग्रन्थऋग्वेद भूमिकांक कथनानुसार आपको प्रमाण है। क्या अब भी आपको सर्वज्ञ मिद्धि मान्य नहीं है ? यदि नहीं है ती आप अपने ही शास्त्रोंको अप्रमाणभूत टहराते हैं। उक्त कथनो-से नामान्य सर्वज्ञ सिद्धि आप मान चुके, इसिल्ये निर्देशित्व हेतुसे तीर्थकर ही सर्वज्ञ सिद्ध होते है। और उनमें निर्देशिता युक्ति शा-स्त्रसे अविरुद्ध वचनों द्वारा आती है।

अविरुद्धता उनके वचनों द्वारा कही हुई मोक्ष संसार व्यवस्था-के ठीक होनेसे सिद्ध होजाती है।

योगार्य भाप्य १ अध्याय ४७ सूत्र

निर्विचार वैश्यारचेऽध्यातम प्रशाद

अर्थात् निर्विचार समाधिकी निर्मलतासे सन पटार्थोका यथार्थ ज्ञान होता है।

भाष्यकारका कथन।

प्रज्ञा प्रसादमारुह्य, शोच्यः शोचतो जनान् । भूमिष्ठानिव शैष्टस्यः, सर्वीन् प्राज्ञो तु पश्यति ॥ जैसे पर्वतपर स्थित हुआ पुरुष सत्र पटार्थोंको देखता है वैसे ही शोकसे रहित योगी प्रज्ञा प्रसादको प्राप्त होकर सत्र पदार्थोंको देख सक्ता है।

रनो गुण तमो गुग यदि मुक्तात्मासे अलग हो नाते हैं तो नतलाइये नीवात्माके कवसे लगे ?

योगी सर्वज्ञ प्रतिपादक आपका आगम इस प्रकार है। यह आगम आपके ऋग्वेद भाष्य भूमिकामें प्रमाण ग्रन्थोंमें लिखा गया है। ऋग्वेद भाष्य भूमिका आपको प्रमाणभूत ही है।

परिणाम त्रयसंयमात् अतीतानागत ज्ञानाम् सूत्र१६वा पाट दश प्रवृत्या लोक न्यासात् सूक्ष्म व्यवहित विप्र कृष्ट ज्ञानम् ॥

सूत्र २४ वा पाठ ३ रा । और भी-

मुनन ज्ञानं सूर्यें मयमात् सूर्य ब्रह्मका ययार्थ बोव हो जानेसे त्रिलोकीका अपरोक्ष ज्ञान हो जाता है।

सूत्र २५ वा पाठ ३ रा।

तीर्थकर जमीनपर चछते हैं या नहीं इत्यादि कथन आपका सिद्ध करता है कि आप प्रकरण गत सर्वज्ञ सिद्धिको मान चुके हैं। इस विपयान्तरका उत्तर अभी देना आपकी कोटिमें आना है।

शरीर घारित्व हेतुका विवेचन पहले अच्छी तरह किया जा चुका है। तीर्थंकर क्यों नहीं मुझे खडनसे रोकते यह कथन भी आपके ईश्वर परदोषाध्यापक होता है। जीव कैथंचित् नित्य और अनित्य मी है। द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा नित्य है क्योंकि सभी अवस्थाओं में जीव जाता है और पर्ध्याय नयसे अनित्य है परिणाम स्वभाव वस्तु है। समवाय नित्यकान्तका खंडन और तादाम्य रूपका खंडन आपको प्रमेयकमलमार्तडमें कहा गया है और प्रमेयरत्नमालामें १०४ पेजमें देखिये।

——०११°—— विद्वानोंके सुभीतेके छिये।

ईश्वरके कर्तृत्वमें जैनियोंकी ओरसे निम्न लिखित प्रश्न किये गये हैं, पाठक गण देख लें उनके उत्तर कहांतक दिये गये हैं ?

१—प्रथम सम्पूर्ण जगत्मे कार्यत्व ही असिद्ध है क्योंकि सूर्य, चन्द्र, सुमेरू आदि पदार्थोंका कभी अभाव ही न था, इनका पहले अभाव सिद्ध हो जाय, तब उनमें कार्यत्व हेतु द्वारा ईक्वरकृत कर्तृता सिद्ध हो सकती है इसल्यि पहले प्रागभाव प्रतियोगित्व रूप कार्यत्व इनमें सिद्ध की जिये '

२-कार्यकी चेतन कर्तांके साथ व्याप्ति नहीं है किन्तु कार-णके साथ है, जैसे जलकी मेयके साथ, वनाग्निकी वासोंके साथ, इनमें चेतनकर्तृता किस तरह आती है ²

त्रिना कर्ताके वनी हुई वस्तुएं प्रत्यक्ष दृष्टिगत होती है जैसे नर्मदाके गोल पत्थर, ओले, विजली, पहाड़ोंकी भिन्नर रूपमें रचना, आदि इनमें चेतनकर्ता सिद्ध करो ?

३—उन्ही परोक्ष पदार्थोंकी सत्ता स्वीकार की जाती है जो किसी प्रमाणसे सिंद्ध हों। पिता प्रत्रका जन्य जनक सम्बन्ध होनेसे परोक्ष पिताकी सत्ता माननी ही पड़ती है किन्तुं स्वयंसिद्ध चास मेंघादिका कर्ता ईस्वर कैसे प्रमाण सिद्ध है 2

४—जो अनुमेय होता है वह किसीके प्रत्यक्ष अवश्य होता है यदि ईश्वरकर्ती अनुमेय हैं तो वह किसके प्रत्यक्ष है ? ५—जिस कुम्हारका दृष्टांत देकर इश्वरमें कर्तापन सिद्ध किया जाता है वह सशरीर अल्पज्ञ है, आप (समाज) का साध्य अशरीर मर्वज है इसिल्ये कार्यत्व हेतु सशरीर अल्पज्ञ कर्ताको ही सिद्ध करेगा अत विरुद्ध हेत्वाभास ग्रस्त है और दृष्टात भी साध्य रहित है क्योंकि यहांपर विशेष कर्नाके साथ न्याप्ति है इसका क्या उत्तर है 2

६ – कार्यत्व हेतु सन्प्रतिपक्ष भी है। ईश्वर जगत्कर्ता नही हो सक्ता है जरीर रहित होनंसे, क्योंकि विना शरीरके प्रयत्न होना असभव है, क्या विना शरीरके किया हो सक्ती है 2

७-ईन्धर व्यापक और निष्क्रिय है इसलिये हलन चलन क्रियाक विना कर्ना केसे '

८—ईश्वरकी इच्छा एक है या अनेक १ यदि एक है तो सदा एकमें ही कार्य होने चाहिये फिर विरुद्ध नाना कार्य क्यो देखें जाते हैं १ यदि अनेक है तो एक समयमें अनेक इच्छाओंका होना कैसे सभव है १

९-ईश्चरेच्छा स्वाभाविक है या वैभाविक /

१०-इंश्वरका सृष्टि रचनेका स्वभाव है या उसे नाश करने-का, विरुद्ध टो स्थभाव एक समयमें कैसे 'यटि क्रमसे होते हैं तो ससारम कहीं उत्पत्ति कही विनाश कैसे '

११—जन कि माता पितासे मनुष्य होते हैं यह न्याय सि-द्वान्त है तन प्रलयके पीछे मनुष्य कैसे उत्पन्न हुए थे १

१२-प्रलयमे जीव सकर्मा थे या निष्कर्मा, यदि निष्कर्मा थ तो मुक्तोंके समान हुए फिर ईश्वरने सृष्टि किसके लिये रची ? यदि सकर्मा थे और ईश्वर भी है ही फिर प्रलयकालमें ही सृष्टि रूप कार्य क्यों नहों हुआ ?

१३-यदि विना चेतनके शकल नहीं आती है तो वतलाइये कि परमाणु और ईश्वरमे शकल है या नहीं 2 यदि है तो उसका. कर्ता भी चेतन सिद्ध होगा फिर जीव प्रकृति ईश्वर ये तीन पदार्थ नित्य कैसे 2 और यदि इनमें शकल रहित हुए भी चेतन कर्ता न माना जाय तो आपके कथनानुसार ही अनैकान्तिक दोष आता है। यदि परमाणुमें शकल नहीं है तो द्वचणुकादि कार्योमें शकल कहांसे आई?

१४—सृष्टि रचते समय ईश्वर परमाणुओंको कार्यमें लानेके लिये स्वयं योजना करता है या परमाणुओंको आज्ञा देता है कि व कार्यरूप होजाय। यदि स्वयं योजना करता है तो शरीरकी आवश्यकता पडेगी, और अचेतन परमाणुओंसे आज्ञानुमार कार्य लेना भी असंभव है फिर मृष्टि कैसे रची गई?

१९—मनुष्योंके बनानेके लिये आपके कथनानुसार ईश्वर साचे बनाता है तो बतलाइये उसने मनुष्योंके ही पहले सांचे तयार किये थे उन्हींसे पशु आदिकी रचना की थी अथवा भिन्न २ सांचे तयार किये थे ?

सांचे वनानेके लिये भी तो अनेक उपकरणोंकी आवश्यकता है वे कहांसे आये ² यदि विना उपकरण—सामग्रीके ही ईश्वरने सांचे ढाले थे तो सांचोंकी क्या जरूरत थी साक्षात् ही सृष्टि क्यों न बना दी ²

ईश्वरके यहां व्लाक जमा रहते हैं या नवीन २ उसे बनाने

पडते हैं ² और ईश्वर पहले साचे तयार करता है फिर मृष्टि बनाता है यह कथन आपके किस यन्यमें है ²

१६-यदि ईश्वर स्वय कर्म फल देता है तो एक पशुका जब कोई विधक वध करता है तो वह टोपी और धर्मात्माओ द्वारा नीच क्यों बनाया जाता है क्योंकि पशुको तो ईश्वरने कर्मफल दिलाया है वही दोपी ठहरना चाहिये ?

१७-यि वह टयालु है तो दरिद्र, रोगी, वहरे, गूगे प्ररूप क्यो बनाये ?

१८-यदि ईश्वर सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ है तो वेश्या, इधिक, चोर आदि अनर्थकारी क्यों बनाये, वह तो पहले ही से जानता था कि ये अनर्थ करेंगे, वह शक्तिमान् है इसलिये अब भी क्यों नहीं रोकता है ²

नोट-इन प्रश्नीका ममीचीन उत्तर आर्थ समाजके अन्यान्थ विद्वान भी दे सके तो हम उन्हें भी शास्त्रार्थ कीटिमें मान्य समझेंगे। जैनमित्रमण्डल ।

× × × ×

तीर्धकरोंकी सर्वज्ञतामें जैनियोकी ओरसे निम्नलिखित प्रमाण दिये गये हैं। पाठकगण ! इनपर भी विचार करें और देखें कि उनका खण्डन कैसा किया है ²

१-जिस प्रकार अन्धकारके दूर हो जानेपर चक्षु रूपको साक्षात् कर्ता है उसी प्रकार जिस आत्मासे ज्ञानको रोकनेवाले आवरण-कर्म हट गये है वह आत्मा भी सकल पदार्थोका साक्षात् कर्ता है ऐसा तीर्थकर-सर्वज्ञ है। २-सम्पूर्ण जीवोंमें ज्ञानकी कभी वेशी पाई जाती है। पशु-ओंके ज्ञानसे मनुष्योंका ज्ञान वढा हुआ है। मनुष्योमें भी उत्तरोत्तर वढा हुआ प्रत्यक्ष प्रतीत होता है, योगियोंमें और भी अधिक ज्ञान वढ जाता है इससे सिद्ध होता है उस ज्ञानको रोकनेवाहा कोई आवरण अवन्य है। जिस जीवके जितना२ वह आवरण हट जाता है उस जीवके उतना २ ही ज्ञान प्रगट हो जाता है, इस प्रकार आवरणकी कभी होते २ किसी आत्मामे पूर्णतासे आवरण हट जाता है वही आत्मा मर्वदृष्टा है।

३-जिम प्रकार सोनेको अन्निम देनेसे उसमेंसे कालिमादि दोष धीरे २ निकलते हुए सब निकल जाते हैं फिर सोना शुद्ध हो जाता है उसी प्रकार आत्मासे रागद्धेष (क्रोधमानादि) धीर २ कम होते हुए मनुष्योंमें दीखते हैं, ध्यानी योगियोंमें बहुत कम रागद्धेष रह जाता है, कम होते २ कहींपर सम्पूर्णतासे नष्ट हो जाते हैं। जिस आत्माम सर्वथा रागद्धेष नहीं है वही आत्मा सर्वज्ञ है।

४—रागद्वेष और आवरण आत्पाके नही है किन्तु कर्मीके निमित्तसे हुए हैं इसिल्ये वे दूर किये जा सक्ते हैं।

५-जो अनुमेय होता है उसका किसीको प्रत्यक्ष अवव्य होता है, सूक्ष्म-परमाणु आदि पदार्थ हमारे अनुमेय हैं इमलिये वे किसीके प्रत्यक्ष भी अवश्य है। जिसके प्रत्यक्ष हे वही सर्वज्ञ-तीर्थकर है।

६—रारीरवारित्व और परिच्छित्र परिमाणत्व हेतु सर्वज्ञकं निषेधमें व्यभिचारी है। जिस प्रकार मैत्रके चार काले पुत्रोंको देख कर उसके गर्भस्थ पुत्रको भी मैत्र पूत्रत्व हेतु द्वारा काला सिद्ध करना व्यभिचारी है नयोंकि मैत्र प्रत्रत्व रहते हुए भी सफेद प्रत्र हो सक्ता है इसी प्रकार शरीरधारित्व और परिच्छिन्न परिमाणत्व रहते हुए भी सर्वज्ञ हो सक्ता है। यदि शरीरधारित्व और परिच्छिन्न परिमाणत्व ज्ञानकी वृद्धिमें वाधक हो तो योगियोंमें और मुक्तात्मा-ओं तक ज्ञानकी वृद्धि क्यो होती है ²

७—नीवोंका ज्ञान कम वढ क्यों होता है इसका आपके मतसे क्या उत्तर है ² यदि ज्ञानको रोकनेवाला कोई कारण नही है तो ज्ञानकी कमी वृद्धिका भी नियम नहीं हो सक्ता है फिर ज्ञान बढकर सर्वज्ञ तक क्यो नहीं जाता ²

यदि रोकनेवाला कारण है तो वह किसी आत्मामें सम्पूर्णता-से दूर क्यो नहीं हो सक्ता है 2

८—आप (आर्थ समाज) के मतमें वैदिक मुक्तात्माओंका ज्ञान बढते२ बहुज़ हो जाना है, हम पूछते हैं कि मुक्तात्माओंका ज्ञान बहुज़ तक क्यों बढ़ा थ और आगे उसे कौन रोकता है . वह ज्ञान सर्वज़ (लामादूद) क्यो नहीं होता .

९--यि सर्वज्ञको जाननेवाला सर्वज्ञ ही हो तो आपका विदेक ईक्वर किस सर्वज्ञने जाना है। यदि जाना है तो सर्वज्ञ सिद्धि अनिवार है, यदि नही जाना है तो आपके कथनानुसार ही आपका ईक्वर अल्पज्ञ सिद्ध होता है।

१०—सर्वज्ञका निषंध प्रत्यक्षसे नहीं हो सकता है, क्योंकि इन्द्रिय जन्य ज्ञान सर्व देश सर्व कालका निषेधक हो नहीं सकता है, अतिन्द्रिय अभी सिद्ध नहीं है।

११--विना उपदेशके भी तीर्थकरमें पहले क्षयोपशमसे ज्ञान

बढ़ जाता है, जैसे मदन मास्टरको ६ वर्षकी अवस्थामें गांयनका किसने टपदेंश दिया था ? आर भी पहले संस्कारको कारण मानते ही हैं।

१२—वेदिक ईश्वरसे अतिरिक्त योगी भी सर्वज्ञ होते हैं इस विषयमें आपके वेदोंके प्रमाण भी दिये जा चुके है जो कि आपके प्रमाणभूत हैं।

१३—जो सर्वथा निर्दोप होता है वही सर्वज्ञ हो सक्ता है ऐसे तीर्थकर ही हो सक्ते हैं,

१४—आत्मामं रागद्वेष कपायोंसे कमन्य होता है कमोंसे नवीन रागद्वेष होते हैं उनसे फिर कर्मन्य होता है। यह सन्तित नीन वृक्षकी तग्ह चटती है, परन्तु जिस प्रकार नीनको अग्निमं भृन दिया जाता है फिर उस नीनमें अंकुर जनन सामर्थ्य नहीं रहती है उसी प्रकार निस आत्मासे एक नार रागद्वेष सर्वथा दूर हो जाते हें फिर उस आत्मामें कर्मन्य कभी नहीं हो सक्ते हैं। कारणके अभावमं कार्य भी नहीं हो सक्ता हैं। इस टियं सर्वज्ञ तीर्थकर फिर कर्मनन्य नहीं करते हैं, सड़ा नीतराग सर्वज्ञ अलैकिक सुखमय रहते हैं। जैनिमिन्नमण्डल ।

आर्यसमाजकी ओरसे छपे हुए शास्त्रार्थकी भूमिका ।

हमारा शास्त्रार्थ प्राय छप ही चुका था इसी अवसरमें हमें आर्थ कुमार सभाकी ओरसे छपा हुआ शास्त्रार्थ भी मिल गया,

शास्त्रार्थके आदिमें जो भूमिका है उसीसे पाठक शास्त्रार्थके विजय पक्षका परिमाण और समाजी महोदयोंके बुद्धि कौशलका परिज्ञान स्वयं करेंगे ही । हमें उस विषयमें अधिक वक्तव्य नहीं है केवल एक वात कहना है-वह यह है कि हमारे पं० जी (पं० मक्खन-लालजी न्यायालंकार) ने यह क्हाथा कि यह नियम नहीं है कि जो २ शरीरधारी होता है वह सर्वज्ञ होता ही नहीं, सर्वज्ञके निषेधमें शरीरधारीत्व हेतु शंकित व्यभिचारी है जैसे झ्याम मैत्र पुत्रोंको देखकर कोई गर्भस्थ बालकमें भी मैत्र पुत्रत्व हेतुसे झ्यामता 'सिद्ध करें तो वहां भैत्र पुत्रत्व हेतु व्यभिचारी है। क्योंकि मैत्र पुत्र रहते हुए भी गर्भस्थ बालक गोरा भी होसक्ता है। इसी प्रकार चारीर्धारित्व रहते हुए भी सर्वज्ञ हो सक्ता है अन्यशा ज्ञानकी योगियोंमें वृद्धि क्यों होती जाती है 2 यदि यह कहाजाय कि हमलोग शरीरधारी है परन्तु सर्वज्ञ नही है इसी प्रकार कोई भी चारीरधारी सर्वज्ञ नहीं हो सक्ता, तो विपक्षमे ऐसा भी कहा जा सक्ता है कि जैसे हम छोग जीव (आत्मा) हैं परन्तु सर्वज्ञ नहीं इसी प्रकार वेढिक ईश्वर भी जीव है, वह भी सर्वज्ञ नही हो सक्ता " न्यायालंकार " जीने जीवत्व हेतुको शकित व्यभिचारी स्वयं कहा है, परन्तु ईस बातको प० नृप्तिहदेवजी ही स्वय भी नही समझे और अपनी समझका परिचय देनेके लिये स्वयं भूमिक।में वही वात रखदी, इतना ही नहीं किन्तु उस शांकित व्यभिचारी हेतुको सद्धेतु समझकर आपने उस दोषको हटाते हुए अपने ईश्वरको जड भी बना डाला । आप भूमिकामें लिखते हैं कि "हम ईश्वरको जीव मानते क्व हैं जो आप जीवत्व हेतुसे असर्वज्ञ

सिद्ध करते हैं। आप पहले हमारे ईश्वरमें जीवपना भी नो सिद्ध की जिये।" कैसी मगझ और कैसा उत्तर है? पहले तो हमारे पं॰ जीका आशय ही नहीं समझे और उत्तर देते हुए ईश्वरको जड् बना डाला। क्यों महात्माजी! जब ईश्वर आत्मा ही नहीं तो उसमें सर्वज आदि गुण कैसे ? ज्ञान गुण नो नीक्का ही धर्म है निर्जीव प्रकृतिका तो नहीं है। आपके शाखकारीने भी तो आत्मांके ही जीवात्ना परमान्मा ऐसे दो भेद किये हैं। आप तो परपञ रूण्डन करते समय अपने मिद्धान्तींजा भी खञ्डन कर गणे, धन्य है आपकी गहरी समझ पर! पाठको ' शाल्लार्थमे ममानके पं. जीने ऐसी वार्ते कहीं हैं जो म्बयं व समानियोंसे ही हाम्यभाजन बने हैं जैसे-उन्होंने कहा है कि ' वदि तीर्थेकर मर्वज है तो क्यों नहीं चोरी आदि अन्योंको रोक्ता है, यह दोष नो वैदिक ईक्वरको कर्ना माननेवास्टों पर ही जाता है। " तीर्थंकर तो वीतराग हैं इम लिये इम दोषका वहां तो अवकाश ही नहीं है। ममानी ही द्यालु कर्ना मानते हैं। उन्होंने अपने मुखसे ईक्कर पर इम दोक्को स्वीकार किया है। ऐसा २ वातों र ही उपस्थित पव्छिक हंम पड़ती थी और ममाजके पं. जी स्वयं हरवार कहते थे कि " मैं वोख्ता हूं तो पश्चिक इंस पर्डनी है और जैन पं. जी बोलते है तत्र शान्त होकर मुनती है। "

जैनमित्रमण्डल ।

वंदे निनवरम् । ज्ञिनसिङ्गसण्डलके नियम ।

मुख्योद्देश्य-परस्पर प्रेम बढाना, गायन मडली स्थापिन इरना, कुरीतियोंका वर्जन प्रुरीतियोंका प्रचार करना तथा व्याख्यान्तां ममाचारपत्रों और ट्रेनटोंद्वारा मद्धर्म (जैनधर्म) का प्रचार करना और विद्याप्रचारके लिए लायत्रेरी व नाइटक्क्ल, र रीरस्थाक लिए व्यायामशाला व परोप कारार्थ औषधालय स्थापिन करना इप ममाके मुख्योद्देश होगे।

- (१) इस सस्थाका नाम नैनमित्रमंडल होगा।
- (२) यह सभा नियमित साप्ताहिक हुवा करेगी, जिनमें निम्न लिखित पटाधिकारी चुने जायगे—पमापति, उपसभापति, मत्री, उपमंत्री, कोपाध्यक्ष, उपकोपाध्यक्ष होंगे।
 - (३) समाका उचिन प्रवन्व करनेके लिए एक कार्यकारिणी कमेटी होगी जिसका कोरम ९१ से अधिक न होगा, जिसमें ६ पदाधिकारी और रोप साधारण समासट होंगे, और नृतीयांश मभासद होनंपर कार्य प्रारंभ किया जाया करेगा।
 - (४) सभाका प्रत्येक कार्य बहु मम्मितिसे हुवा करेगा। सभा-पितकी सम्मिति संख्यामे दोके वरावर समझी, जायगी।
 - (५) इस सभाके सभासट दो ०प्रकारके होवेंगे-एक स्थायी दूसरे साधारण।
 - क-म्थायी समासद वे होवेंगे जो एक मुक्त १०१) स्पर्य प्रदान करें तथा जन्म पर्यत सभासद रहें।

(\$ \$)

- न्द-माधारण मभामद्र वं होंबेंगे को कमसे कम ।) माहवार दे मर्केंगे ।
- (६) इमके मभामदोंको बालविवाह, बृद्धविवाह, बेब्बानृत्य आदिमे मस्मिलित न होना होगा। और मन व्यमनका त्यागी ही समासद हो मकेगा।
- (७) इन्हें सभायदोंको प्रत्येक मभासदके मुख दुःख आदि प्रत्येक कार्योमे सम्मिलित होना होगा ।
- (८) इम मभाके समासद कुचरित्री तथा किसी विशेष अद-गुणमें प्रसिद्ध मभासद न हो सर्वेशे, हेकिन सभामें आ सर्वेशे वशर्ते कि व नियमकी पावंदी करें।
- (९) इन नमाक समामद १५ वर्षसे कम अवस्थावाले न हो सकेंगे।
- (१०) इनके मनामद ब्राह्मग, क्षत्रो, वैदय, और स्वर्राशुद्र हो सर्केग ।
- (११) सभासद् सभासदीका प्रवंशपत्र मरनेसे तथा एक मासकी पंशागी फीस भरनेसे तथा कार्यकारिणी कमेटीसेस्वीकार-पत्र नेजनेसे समझे कांयों।
- (१२) नभाके पड़ धिकारी व कमेटी मेम्बरका चुनाव वर्षांतपर हुवा करेगा, लेकिन विशेष करुण होनेपर वीवमें भी बदले वा सकते हैं।

सभाके पदाधिकारी वु सभासदोंके कर्तव्य ।

स्भापनि—जन्सों ने उपस्थित होना, सभाके उद्देशोंका । जार तथा मभाके प्रत्येक कार्यकी जांच करना, सभाके जरूरी कार्यमें १४) ह० विना कंमटीकी आजाके वण्य वर सकता है। उपस्थापित-सभापितकी अनुपिश्विमे सभापितका कार्य व उपस्थितिमें सहायता करना।

संन्त्री—पत्र व्यवहार करना, समस्त रिजास्टरोंकी पूर्ति करना, जहसोंकी सूचना देना, जो प्रस्ताव कमेटीमें पेश करना हो उमपर समासदोंकी सम्मति छेनी, पास हो जानेपर हस्ताक्षर कराना और समाके जरूरी कार्य १०) रुपये विना कमेटीके व्यय कर सकेगा।

उपमंत्री—मंत्रीकी अनुपस्थितिमें कार्य करना और उप-स्थितिमें सहायता पहुचाना ।

कोषाध्यक्ष-सभाकी आमद व्ययका हिसाब रखना और कमेटी में माहवारी हिसाब छुनाना तथा सभासदोंसे फीस बसूछ करना और रसीद देना होना होगा।

उपकोषाध्यक्ष-अनुपस्थितिमें कार्य करना, उपस्थितिमें सहायता पहुंचाना ।

समासद्-गेप सभासदोंका कर्तव्य है कि नियत समयपर अवश्य पर्धोर, सभाके उन्नतिके उपाय निरन्तर करते रहना तथा अपनी स्वतंत्र सम्मति प्रगट करना तथा वे नियम कार्य होनेपर सभापति मत्रीको सुचित करना । यदि सभापति व मंत्री उचित प्रव-न्घ न करें तो शीघ्र कमेटीको सुचना दें।

कार्यकारिणी कमेटीके नियम।

- (१) इस कमेटीके समासट वो ही हो सकेंगे जो सभामें बहु सम्मतिसे चुने जायंगे।
- (२) कमेटीके नियत समयपर कमेटीके सभासदोंको अवस्य

आना होगा, किन्तु विशेष कार्य होनेपर चिट्ठी ग्रारा अपनी सम्मति प्रगट करनी होगी।

- (३) समाका प्रत्येक कार्य कमेटीमें पास हो जानपर हुवा करेगा, किन्तु विशेष कार्यको समापति व मंत्री अपनी सम्मतिसे भी कर सकते हैं।
- (४) कमेटीमें पास हुने प्रस्तानोंपर कमेटीके सर्वे सभासदोंको हस्ताक्षर करने होंगे।
- (५) कमेटी प्रति मासकी पहली तारीखको हुवा करेगी, परन्तु विशेष कार्य होनेपर वीचमें भी हो सकेगी, जिसकी इत्तला सर्व समासदोंको मंत्री किया करे और कारण लिखना होगा।
- (६) कमेटीमें विना इत्तला जो समामद 'बराबर ४ कमेटीमें न आर्वेगे वो कमेटीसे पृथक् समझे जांयगे।
- (७) जो सभासद नियमोंका उछंचन करेगे वे कमेटीकी आज्ञा-जुसार समासदीसे पृथक् कर दिये जायगे।
- (८) और समाके १५० सभासद होनेपर अखनार निकाला जायगा जो सभासदोंको ने मूल्य मिला करेगा।
- (९) कमेटीकी आज्ञानुसार वे फीस भी सभासद हो सकेंगे। नोट—समासे निकले हुवे ट्रेक्ट वगैरह समासदोंको व मुल्य दिये नाया करेंगे।
 - इन नियमोंमें परिवर्त्तन करना कमेटीके अधिकारमें होगा।



् मुद्रक्

न कापडिया, "जैनविजय" प्रिन्टिंग वपाटिया चक्छा-सरतः

प्रकाशकः विरख्मल जैन, उपमृत्री, जैनिमित्रमृंड

ं घरमपुरा-देहली.

इनिहम्हरूके विकाज देशह

१ मिध्यान्यविश्वेताके समेरे भ्योगित हैं। परिशा और प्राप्तार निकार दिया राज है। सून्य सिर्क भी

देन समानने मुझीन नाडू उप किसोरनी सुनना है। इनहीं है दिना में मुझीन नाडू उप किसोरनी सुनना है। इनहींने केन नातिकी एतित अवन्यास दुः किन होता यह भी है जिल्ला है, किनमें परित होनेका कारण महामाति दर्शाया है जिसको पहत्तर प्रापेक न्यक्तिक रोंग्डे हह हो नाते हैं। अतः आप समानकी दशासे परितिन होना नाहते हैं, तो शीव ही प्रशिद्धि। मूल्य निर्में

(३) हिनेषी भजनसंग्रह—निसर्गे उपदेशी व प्रार्थनाव्य भननोक्ता संग्रह किया गया है। मू० ८)

उपस्थित है। मूर्गी

भ्युम्नके मिल्नका पता-

(१) मंत्री, जैन भिन्नमंडल, धरमप्रग-देहली

(१) पं. सनीराम नन्तुराम, मालिक,

